

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो

लेखक मुनि नधमल
सकलश्रियता • कनकेश चतुर्वेदी



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ शैलीद्वय ग्रन्थमाला प्र.बाक-२१७
एथिक्स एव नैतिकता
बहुमीश्वर शैल

Lokodaya Series Title No 17

TUM ANANT SHAKTI KE
SROTE HOD

(Ethics & Morals)

MLNI NATHMAL

Bharatiya Jnanpith

Publicat on

5 cond Ed tion 1988

Pr ce Rs. 2 00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

४ अरविन्द बाग पौन नयादहारा २७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाशुक्ल मास वाराणसी ५

शिव-वैश्व

१९९१/९२ केरामी ग्रन्थ प्रकाश विभागी २

निधीय संस्करण १९९६

मूल्य २ ००

संयोजित प्रकाशन वाराणसी ५

प्राथमिकी

०

'तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो' इस अभिधासे स्पष्ट है कि शक्तिका स्रोत बाहरसे भीतरकी ओर नहीं आ रहा है, किन्तु भीतरसे बाहरको ओर आ रहा है। हमारे भीतर शक्ति है, प्रकाश है, और भी बहुत कुछ है, पर हमारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं और मन भी बहिर्मुख हो रहा है। इसीलिए अपनी आन्तरिक शक्ति और प्रकाशसे हम अपरिचित हैं। हम मुनी-मुनाई व रटो-रटाई बातोंके आधारपर जानते हैं कि हमारे भीतर अनन्त शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। पर सचाई यह है कि हम नहीं जानते कि हमारे भीतर अनन्त शक्तियोगका अस्तित्व है।

मनुष्यके इस आनन्दको अभिव्यक्त करनेके लिए हमारे पूर्वज मुनियोंने एक विद्याका आविष्कार किया। उसे आप आध्यात्मिक-विद्या, योग-विद्या या मोक्ष-विद्या कुछ भी कहिए, प्रयोजन एक ही है और वह है अपनी भीतरी शक्तियोगका प्रकटन।

साख्य, वैदिक, बौद्ध, जैन आदि सभी परम्पराओंमें योग-विद्या समाहित रही है। महापि पतञ्जलिका योगसूत्र, बौद्धोंका अभिव्यक्तकोष और विशुद्धिमत्त, वैदिकोंका योग-शास्त्र, हठ-योग तथा तन्त्र-शास्त्रकी परम्परामें साधना सम्बन्धी अनेक

दाय मिलती है। वे सुख्यवस्थित और सुसम्पादित हैं। वेन
 धार्मिकतामें भी वैसे धन्योकी कमी नहीं है पर न सुसम्पादित
 नहीं है। इसलिए योग विद्याके शिक्षासुका पहला प्रश्न यह
 होता है कि वेन-परम्पराम योग-विद्याका स्थान है? यह
 प्रश्न अनेक व्यक्तियोंन मझसे पूछा है और उन व्यक्तियोंन
 भी पूछा है जो वेन-परम्पराम पढ़े-पुसे हैं। इस प्रश्नका पूरा
 समाधान अभी हम नहीं दे पावे हैं। आचार्य भी कुछसी इस
 विद्यामें प्रयत्नशील हैं और समय आतेपर यह समाधान
 प्रस्तुत किया जायेगा।

योग विद्याकी और पैरा सुकाय प्राप्तिमें ही रहा है। सामना
 न अनुभूतिका योग मिलनपर यह हम सुक्य ही जाता है जिसे
 सुक्य माना जाता है। आचार्य भी कुछसीके प्रीतिपूर्ण और
 भाग दहनन मुझे जिस विद्यामें प्रतिश्रीक बनाया यह स्थितिमें
 बाकी गति है। इसलिए हम निम्नोमें प्रति-सापेक्ष स्थिति
 की अपेक्षा स्थिति-सापेक्ष गति ही अधिक मिलेगी। उसकी
 बात अपेक्षा है।

भुनि श्रीचन्द्र कमल' तथा भुनि सुक्यराजने हम निम्नोका
 उपलब्ध कर उस सामयिक अपेक्षाकी पूर्ति की है। यह पुस्तक
 हम योगके परिचय पानेका एक सामान्य बन जायेगी—यह
 न मानना है।

आचार्य सुक्या २२
 आचार्य (राजस्थान)

—भुनि मधुसूदन

१. बुद्धलिका पुष्यमित्र धादिप	७
२. जैन-योग	१०
३. जैन-योग और आसन	२३
४. काथोत्सर्ग और ध्यान	२७
५. ध्यान	३५
६. एकाग्रता	३९
७. भावक्रिया और अनावेग	४१
८. मोह-च्युह	४४
९. आवेग और उप-आवेग	४७
१०. उपासनाके बीज	५१
११. श्रुतकी उपासना	५४
१२. अनयका सम्प्र	५८
१३. अ	६१
१४. निहार-धर्या	६३
१५. स्वास्थ्य और आहार-विवेक	६३
१६. चित्तशुद्धिके साधन	७०
१७. संवेग	७४
१८. निर्वेद	७८
१९. सहिष्णुता	८२
२०. ण	८५
२१. प्रामाणिकता	८९
२२. परस्	९४
२३. तुम अनन्त शक्तिके खोस हो	९८
२४. गुरुद्वारा भविष्य तुम्हारे हाथमें	१०३

दुर्बलिका पुण्यमित्र चाहिए

प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु जगदीश काश्यपने जिज्ञासा की—बौद्ध सम्प्रदायमें जैसे ध्यानकी प्रणाली है, उसका माहित्य है, जैसे आपके जैन मंत्रमें उसकी प्रणाली क्या और कैसे है ? माहित्य-ग्रन्थ कौन-सा है ? वाराणसीकी वात है, जब वे आचार्यश्री नुलसीसे बानालाप कर गये थे । मैं आचार्यश्रीके पास ही बैठा था । जैन साहित्यके आधुनिकीकरणकी उन्हें जानकारी दे रहा था । उनकी जिज्ञासामें एक प्रेरणा थी । उमने मुझे सुन्दर अतीतका यात्री बना दिया । मुझे स्मरण हो आया, जिज्ञासा नयी नहीं है । बीर-निर्वाणकी छोटी अताश्रीकी घटना है । एक बौद्ध भिक्षु आये और बोले—हम बौद्धोंमें जैसे ध्यानकी प्रणाली है, वैसी आप लोगोंमें नहीं है । आर्यरक्षित सूरिने कहा, यह क्या कह रहे हैं ? जैन-परम्परामें ध्यानका ध्यान बहुत ऊँचा है । हमारी ध्यानकी प्रणाली उत्कृष्ट है । मैं शब्दोंमें क्या कहूँ ! यह जीवन उदाहरण है, मेरे पास । यह रहा दुर्बलिका पुण्यमित्र । फितना दुबल हो रहा है । ऐसा क्यों हुआ है ? बौद्ध भिक्षुने कहा, यह पीष्टिक भोजनके अभावमें दुबल हो गया होगा ।

तब आर्यरक्षितने कहा, नहीं, ऐसा नहीं है । देखो, यह वैठा घृत-पुण्यमित्र । इसे घृत-सन्धि (योग विमूति) प्राप्त है । कल्पना करो, एक गर्मिणी स्त्री है । पतिने छद्म मासके प्रयत्नसे घृत-सञ्चय किया है । वह स्त्री कृपण है । उसका पति भूखा हो, धी मारि तो भी वह अपने पतिको धी बना नहीं चाहती । यही गौचरी जाये तो सहर्ष इसके पात्रमें धी उँबेल देगी । फिर कैसे माना जाये कि पीष्टिक आहारके अभावमें दुर्बलिका पुण्यमित्र है ?

दुर्बलिका पुण्यमित्र चाहिए

बीड किस ठो क्या कारण है ?

आयरलैंड ध्यानकी उत्कृष्ट आराधनासे हो यह एसा बना हुआ है । मरी बातपर विश्वास न हुआ हो वो कुछ दिन इसे जाप अपन मठम रख कर परीक्षा कीजिए ।

बीड मिश्रण आचार्यकी बायीकी स्वीकार किया । दुर्बलिका पुष्पदिन आचार्यका शान्ति पा उस जिसके साथ चले गये । कुछ दिनों वही रहा । पौष्टिक मोशन किया पर वे स्पूक न बन । समकी सुधमदाने बीड मिश्रणको प्रभावित किया और जब न बैन-आसनकी ध्यान प्रथाकीके प्रति संश्लिप्त नहीं थे ।

आचार्यकी तुलसीके पास कोई दुर्बलिका पुष्पदिन होता तो मिश्रण बननीसबीकी विज्ञानाका उसी प्रकार परितोष मिलता किन्तु परिस्थिति निम्न थी । आज ध्यानी मनियो और ध्यान योगीकी परम्परा कुप्त थी है । आगमान ध्यानकी प्रथाकी विकीर्ण-शी है । परन्तु साहित्यमे ध्यानके उत्पानुवाचन योगविन्दु योगबुद्धिसमुच्चय योगशास्त्र-बसे छोटे ग्रन्थ है पर ध्यानकी समस्त प्रथाकीका प्रतिपादन कोई ग्रन्थ नहीं है । बी सुस्त ग्रन्थ होते है न अन्वय-क्रमके बिना विस्तृत हो जाते है । आज विस्तृति की बधा है यह स्वीकार करते हुए हम कोई संकोच नहीं होता । जयमान् महावीरकी छारी उपस्था ध्यान-प्रतिभासे परिपूज थी । उपस्था क्या है ? कोरा मनचलन ही उपस्था नहीं है । यह बाह्य उपस्था है साधन है ।

ध्यान आन्तरिक उपस्था है । मनचलनके लिए ध्यान नहीं है ध्यानके लिए अन्याय है । बाह्य उप अनुपादेय नहीं है किन्तु वही उपदेय ही रहा है यह अनुपादेय है । मुनि दूसरे ग्रहमें ध्यान करें—बीमं शान्ति शिवाय-यह अविद्यहृष्टाटी मुनिके लिए ही ज्ञान ध्यान क्या है । ध्यान, संवर योग-बसे ग्रन्थ अपरिचित-से होते या रहे है । आजकल जन-मानस विरता बाह्याचारपरक है उत्तम अध्यात्मयोगपरक नहीं है । मन चमका मूक सुभ है—नयाय विभव । साधनाका आत्मजन कथाय निवयके लिए है पर

जैन योग

उमास्वास्तिन सम्मत्सुखन सम्मत्ज्ञान और सम्मत्चारित्रको मोक्षयोग कहा है। उसीको आशय हैमचन्द्रने योग कहा है। हरिगण्ड सूरिके अग्नि मतमें ब्रह्म-ज्ञान योग है। योग यह है जो मोक्षसे योग—सम्बन्ध कराये। ब्रह्म योगका साधन है इसलिए ब्रह्मका चित्तना परिशुद्ध व्यापार है वह सब योग है। यह निश्चय बुद्धिसे है। किन्तु व्यवहार बुद्धि या साम्प्रतिक संकेतके अनुसार योग स्वान् भासन आदि एकाग्रताके विषय प्रयोगकी कहा जाता है। हरिगण्ड सूरिन योगके पाँच प्रकार बताये हैं—

१ स्वान् कापीस्थान पयक पथासन आदि भासन ।

२ ब्रह्म-ब्रह्म सम्बन्ध सम्बन्धन मन्त्र मन्त्र आदि ।

३ ब्रह्म मन्त्र आदिका वाच्यमान ।

४ आत्मज्ञान कर्मी इत्येते मनको कैवल्य करना ।

५ रहित निरात्म्य वा निर्विकल्प विद्याय समाधि रूप ।

इसमें-से प्रथम चार प्रकारोंको क्रमबद्ध और सब तीन प्रकारोंको ज्ञान योग कहा है। पतञ्जलिके अनुसार योग है—

१ ध्यान : आहिंसा सत्य अचीन अहंकार और अपरिग्रह ।

२ नियम : शीघ्र सम्बन्ध सब स्वाध्याय ईश्वर-अधिवास ।

३ भासन : सुखपूर्वक स्थिर होकर बहना ।

४ प्राणायाम : स्वाद्य प्रकृतिको प्रतिबिम्बित ।

५ प्राणायाम : अग्निवाको अपने अपने नियमसे हुटाना बँधसुधी करना ।

६ धारणा : चित्तको किसी ध्येयमें बाँधना—स्थिर करना ।

७ ध्यान चित्तका एक विषयमें स्थिर होना ।

८ समाधि वही ध्यान जब अर्धभाजका प्रतिभास हो जाये, स्वरूप धून्य हो जाये ।

जैन-परम्परामें योगकी अष्टांग व्यवस्था नहीं है । हरिभद्र सूरिने जो पञ्चांग व्यवस्था की है, वह नवीन है । प्राचीन व्यवस्था द्वादशांग है । उसे तप कहा गया है । उसके धारह अंग हैं—

१. अनशन उपवास आदि तप ।

२. ऊनोदरी कम खाना, मिताहार ।

३. भिक्षाचरिका जोवन-निर्वाहके साधनोका समय ।

४. रस-परित्याग सरस आहारका परित्याग, द ।

५. कायबलेन आसन ।

६. सलीनता इन्द्रियोको अपने विषयोसे हटाकर अन्तर्मुखी करना ।

७. प्रायश्चित्त पूर्व कृत दोष विशुद्ध करना ।

८. विनय : गन्धता ।

९. वैषाखृत्य दूसरोंके लिए कुछ करना ।

१०. स्वाध्याय पठन ।

११. ध्यान चित्त-वृत्तियोको स्थिर करना ।

१२. व्युत्सर्ग शरीरकी प्रवृत्तिको रोकना ।

इनमें प्रथम छहको दाह्य और शेष छहको माध्यन्तर तप कहा गया है । महर्षि पतञ्जलिने पूर्ववर्ती पाँच योगोंको बहिरंग साधन कहा है । धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन अन्तरंग हैं । निर्बीज समाधिके लिए इन्हें भी बहिरंग माना है । अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरिया और रस परित्याग । इनका सम्बन्ध भोजनसे है । स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भोजनका निबेक प्रत्येक मनुष्यके लिए आवश्यक है । योगीके लिए उसकी और अधिक अपेक्षा है । जो व्यक्ति काल, क्षेत्र, मात्रा, स्वात्म्यहित या पथ्य, गरिष्ठ, लघु और अपने पाचन बलको देखकर भोजन करता है, उसे जीपसे क्या ?

जैन योग

शोधन उसे बेनी होती है जो अनिष्ट और अहित खाने । यह स्वास्थ्य बुद्धि है । योग नामनाम शरीरकी अपेक्षा मनकी प्रधानता ही गयी है । आनन्दिक स्वास्थ्यके लिए शोधनपर कितना विचार किया गया है, उतना ही शोधन न करनेपर किया है । अन्तर भोगशास्त्री इस विषयमें निश्चय रखते हैं । परमाणु योगीके लिए उपवासना विषय किया है । उन्होंने लिखा है कि योगी अन्न और पानी शोधन न करे । वैजानाथोंने सावधानके लिए शोधन उपका विधान किया है । भवभानु महाशय शोधन उपसूची दे । उन्होंने शोधन उप किया जो उपवाससे लेकर ऊँच मात्रा तक उपवास किये । शोधनकारीन उपवाससे रासायनिक परिवर्तन होता है सकल्प विधि उच्च सुखमें हावी है यह तत्त्व उँच मात्रा था ।

उपवासना अथ आहार-त्याग ही नहीं है । उसका अर्थ है विषय और विचारके त्यागकी समुक्त आराधना । गीताके अनुसार— 'विद्याहारं व्यभिनि विषयात् निवृत्तिं वा वेत्ति न ह । उद्यमे रक्ष नही कृष्टता किन्तु रक्ष रहित परमतराना साम्राज्य वा वह रक्षसे भी युक्त हो जाता है ।' उपवासना प्रयोग शरीर शोधन नहीं किन्तु कर्मभूति है । शरीरका शोधन हीना उसका प्रासंगिक परिणाम है । महात्मा बुद्धने अपने कर्मकी पूर्तिके लिए उपवास किया— इस आसनपर अठे-बीस घंटा शरीर अन्ने सूख जाने तक ही अन्न और पान अन्ने विनष्ट ही खाने किन्तु सुख शोधनकी प्राप्त शिम रित्त यह शरीर इस आसनसे विचलित नहीं होता । भवभानु महाशय शरीर शोधन किया कि 'म सर्व प्रकारके अन्नोप शक्तक सह्य परमात्मता वैशक्तज्ञानकी उपकल्पित न ही प्राप्त । समस्तकी पूर्तिके लिए उपवास शरीर शोधन या विषय-वर्जन आवश्यक है । प्राणायामके साथ उपवासना सम्बन्ध कम है । उपवासना विषय भी प्राणायामके प्रकरणमें किया गया है और उनके आरम्भमें सुख ही तथा जो बार जीवन करनेवा विधान किया गया है ।

जैन आचार्य प्राणायामकी महत्त्व नहीं देते । उनके मतमें यह चित्त

निरोध और इन्द्रिय-विजयका निश्चित उपाय नहीं है। जैन प्रक्रियाके अनुसार विजातीय द्रव्यका रचन और अन्तरभावमें स्थिर होना कुम्भक है। चित्तकी एकाग्रताके लिए यही प्राणायाम है। 'योगवाशिष्ठ' में हठसे चित्तकी विजयको अनुपादेय माना गया है। ऊनौवरी या मिठाहारके विषयमें सब यो एक मत है।

रस-परित्यागका अर्थ है विकृति बढ़ानेवाले रसोंका धर्जन या अस्वादि-भृति। योग-साधना और भृतिमें उत्तना ही विरोध है, जितना विरोध अहिंसा और भयमें है। साधक नित्य रसोंका सेवन न करे, मनोज्ञ आहार न करे, उसमें आसक्त न हो, उसकी स्मृति न करे, उसमें मत्तिका नियोग न करे।

का ेश

काय क्लेशके चार प्रकार हैं—

१ आसन। २. पना सूगंकी रश्मियोगका ताप लेना, शीतकी सहन करना, निर्वस्त्र रहना। ३. विभूषा धर्जना। ४. परिकर्म शरीर-को साध-सज्जाका धर्जन। आसन दो प्रकारके होते हैं—शरीरासन और ध्यानासन। पतञ्जलिने आसनको 'स्थिर-सुख' कहा है। ध्यानासनके लिए दो अपेक्षाएँ हैं—१ शरीर स्थिर रहे, और २ सुखपूर्वक बैठ जा सके। जैन-परम्परामें धीरासन भादि कठोर और पद्मासन आदि सुखासन—इन दोनोंको सुखावहू कहा गया है।

संलीनता

संलीनताके चार प्रकार हैं—

१. इन्द्रिय-संलीनता इन्द्रियोंके विषयोसे वचना। २ कषाम-संलीनता क्रोध, भान, माया और लोभसे वचना। ३. योग-संलीनता मन, वाणी और शरीरकी प्रवृत्तियोंसे वचना। ४. विविक्त-भयन-आसन . एकान्त-स्वान्त-में सोना, बैठना। संलीनताकी आशिक तुलना पतञ्जलिके प्रत्याहारसे

होती है। यौगीके लिए उपस्थान वृत्ति और स्मरता आपसक होती है।

इसके अनुसार प्रकारम यौगी कहीं रह सकत निर्देश ह। आपकके लिए उपस्थान स्थापार और वृत्तमूक इन स्वामीय रहनेका विधान है। इसके वे छोड़ प्रकार विद्योसे बचनेके साधन है। विकार आत्माका बाध रिक्त होय है। विषय आत्माका होय नहीं है बह विकारका निमित्त है। इसलिये उसने बचना आवश्यक होता है। निमित्तोसे बचनेके साधनोको बाह्य रूप कहनका कारण यही है। प्रायविषय आदिसे आन्तरिक विचारका जो ल होता ह इसीलिए उन्हें आन्तरिक रूप कहा गया ह।

प्रायविषय मूकके अनुकर होत है। इनसे साधनाकर पथ प्रदर्श होत है। विषयका भव है—नयन मा बुद्धिके साधनोका आत्मन्य। उसके साध प्रकार है १ ज्ञानका विषय २ ब्रह्म सम्बन्ध वृत्तिमा विषय ३ पारित्य विषय ४ मन विषय—मनका प्रगस्त प्रयोग ५ बचन विषय—बचनका प्रदर्श प्रयोग ६ काम विषय—साधनामीसे बचना आना रहना बैठना सोना ७ जीवोपचार विषय—गुल्की इच्छाका सम्मान करना उनका अनुगमन करना उनका दृष्ट रहना आदि।

पंचाङ्ग

आपकको सहीय देना हीमानुस्य है।

स्वाध्याय

स्वाध्याय और ध्यान दोनों परमाणु भावकी अविच्छिन्नके अन्वय साधन है। यौगी स्वाध्यायके निरुद्ध हो ध्यान और ध्यानके निरुद्ध हो स्वाध्याय करे। स्वाध्याय और ध्यानकी सम्बन्धसे परम-आत्मा प्रतीयत होती है।

स्वाध्यायके पाँच प्रकार हैं—१ वाचना (पना) २ वृत्तमा (प्रकाशना) ३ परिश्रमता (मात्र निचे हुए पाठको वीहणता) ४ अनुश्रमता (विस्तार) ५ बचनका (बर्ष बर्षी बच-बाती)।

शिष्यने पूछा, मन्ते । स्वाध्यायका क्या फल है ?

भगवान्ने कहा, स्वाध्यायसे ज्ञानावरण क्षीण होता है ।

ध्यान

स्वाध्यायके पश्चात् ध्यानका क्रम है । पतंजलिने पूर्वतत्त्व धारणा माना है । इस तपोयोगमें धारणा कोई तत्त्व नहीं है । किन्तु जैन-परम्परामें 'एकाग्रमनःसन्नि' जो है, उसकी तुलना धारणासे होती है । एकाग्रका अर्थ है कोई एक । उसमें मनको स्थापित करना लगाना या बाँध देना—एकाग्र मन सन्निवेशना है ।

पूछा, मन्ते । एकाग्रमन सन्निवेश क्या फल है ? भगवान्ने कहा, एकाग्रमन सन्निवेशनाका फल है—चित्त-निरोध । यही ध्यान है । जो अध्यवसाय बल है, वह चित्त है और जो स्थिर है, वह ध्यान है ।

ध्यानका पहला रूप है चित्तनिरोध और दूसरा रूप है शरीर, वाणी और मनकी प्रवृत्तिका पूर्ण निरोध । साधनाकी दृष्टिसे ध्यानके दो प्रकार हैं—धर्म्य तथा शुक्ल ।

ये दोनों आत्मलक्षी हैं । ध्यान पूर्वघर (विशिष्ट ज्ञानी) मुनियोंके होता है । उससे पहले धर्म्य-ध्यान ही होता है । उसके चार प्रकार हैं—

१. आज्ञा-विचय के अनुसार सूक्ष्म पदार्थोंका चिन्तन करना ।
२. -विचय हेतु क्या है, इसका चिन्तन करना ।
३. विपाक-विचय : हेतुके परिणामोंका चिन्तन करना ।
४. -विचय लोक या पदार्थोंकी आकृतियों, स्वरूपोंका चिन्तन करना ।

, अथाय, विपाक और सत्यान ये ध्येय हैं । जैसे स्फूल या सूक्ष्म आत्मबन्धनपर चित्त एकाग्र किया जाता है, वैसे ही इन ध्येय विषयोंपर चित्तको एकाग्र किया जाता है । इनके चिन्तनसे चित्त-निरोध होता है, चित्तकी शुद्धि होती है इसलिए इनका चिन्तन धर्म्य-ध्यान कहलाता है ।

जैन योग

आज्ञा विषयसे बीतराय नामकी प्राप्ति होती है। अपाम विषयसे राय-इय मोह और उसके उत्पन्न होनेवाले दुःखोंसे मुक्ति मिलती है। विपाक विषयसे दुःख कैसे होता है? क्यों होता है? किछ यथार्थता क्या परिणाम होता है? इनकी जानकारी प्राप्त होती है। उत्पन्न विषयसे मन बनासक्त बनता है। जिसकी उत्पत्ति व्यय और प्रवृत्ति नाम की जाती है। उसके विविध परिणाम-परिवर्तन नाम त्रिय जाती है। तब मनुष्यका मन स्नेह पूजा हास्य शोक आदि विकारोंसे विरत हो जाता है।

अन्य अज्ञान विना विशेष वा विना विकल्पिता शारीरिक सम्प्राप्त है। अज्ञान-अज्ञानम् यह अज्ञान परिष्कृत हो जाता है। मन अज्ञान ही अज्ञान है। इन्द्रियाँ अज्ञान-अज्ञाने विषयको ग्रहण कर उसे प्ररित करती हैं, इस किन्तु उसकी अज्ञानता और यह जाती है। यह समूचे जिसकी परिष्कार करने का जाता है। अज्ञानका नाश है तब अज्ञानबीज मनको शेष विषयोंसे हटा किसी एक विषयपर स्थिर कर देता।

अज्ञान-अज्ञान स्थिरता रहती है तब तबो मन अज्ञान और निष्कल्प हो जाता है। अज्ञान-अज्ञानके अन्तिम अज्ञान मनकी प्रवृत्तिका पूर्य निरंतर पूर्य अज्ञान या अज्ञान प्राप्त हो जाती है। अज्ञान अज्ञानके चार प्रकार हैं—

१ प्रवृत्त-वितक-अविचारि २ एकरय वितक अविचारि ३ सुख किम-अप्रतिपादि ४ समुच्चिन्न किम-अनिवृत्ति।

पतञ्जलिने अज्ञान-वितकके चार प्रकार बतलाये हैं—१ अविचारि २ विवितर्का ३ अविचारि ४ विविचारि।

अज्ञान-वितकके अनुहार वितकका अज्ञान अनुहार-अज्ञाने विकल्प है। विचारका अज्ञान है परिवर्तन। प्रवृत्त मुनि प्रवृत्तके अनुहार किन्ती एक अज्ञानका आत्मन के अज्ञान करता है किन्तु उसके किन्ती एक परिणाम वा अज्ञानपर स्थिर नहीं रहता। यह अज्ञानके विविध परिणामोंपर निरंतर

करता है तथा शब्दमें अर्थपर और अर्थसे शब्दपर एव मन, वाणी, और शरीरमें-से एक दूसरी प्रवृत्तिपर नक्रमण करता है, नाना दृष्टिकोणोंमें उसपर चिन्तन करता है। उसे पृथक्त्व-वितर्क सविचारी कहा है। पतञ्जलिने शब्द, अर्थ, ज्ञान आदि विकल्पोंसे सकीर्ण समापत्तिको सवितर्क माना है।

पूर्ववर मुनि पृथ्वुतेके अनुसार किसी एक द्रव्यका आलम्बन छे उसके किसी एक परिणामपर चित्तको स्थिर करता है। वह शब्द, अर्थ और मन, वाणी तथा शरीरपर नक्रमण नहीं करता। वैना ध्यान एकत्व वितर्क अविचारी कहलाता है। पहलेमें पृथक्त्व है, इसलिए वह सविचारी है। दूसरेमें एकत्व है, इसलिए वह अविचारी है।

पहला सवात-गूहका प्रदीप है और दूसरा निर्वात-गूहका। पतञ्जलिने शब्द, ज्ञान आदि विकल्पोंसे शून्य अर्थात् अर्थमात्रके माहात्कारको निर्वितर्क समापत्ति माना है। उनके अभिमतमें सवितर्क और निर्वितर्क स्थूल पदार्थविषयक है, सविचारा और निविचारा सूक्ष्म पदार्थविषयक है। जैन दृष्टिके अनुसार उक्त दोनों प्रकारोंमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारके पदार्थ आलम्बन बनते हैं। पतञ्जलि चारों समापत्तियोंको सवीज मानते हैं। जैन दृष्टिके अनुसार ये मोहके उपशममें प्राप्त हो तो सवीज और मोहके क्षयमें प्राप्त हो तो निर्वीज होती है।

पृथक्त्व-वितर्क-सविचारी अर्थात् भेद-प्रधान ध्यानका अभ्यास दृढ़ होता है, तब एकत्व-वितर्क-अविचारी अर्थात् अनेद-प्रधान ध्यान प्राप्त होता है। इनके अभ्यासमें मोह क्षीण होता है, साध-साध ज्ञान और दर्शनके आवरण तथा अन्तराय क्षीण हो जाते हैं। आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, बीतराग और अनन्त शक्ति-सम्पन्न बन जाता है। आयुष्मन् गेय रहता है, तबतक वह योगी जीता है। उसकी मृत्यु निकट होती है, तब उसके मूढम-क्रिय-अप्रतिपात्ति ध्यान होता है। इसमें पहले मनका, फिर वाणीका और फिर कायाका निरोध होता है। ध्यास-जैसी मूढम-क्रिया बधती है।

पश्चात् उदना भी निरोध हो जाता है उसे समन्वित क्रिय भगिभृति ध्यान कहा जाता है ।

इसकी प्राप्ति होने ही मणि पत्र ह्रस्वाक्षरी (अ इ उ ऋ ए) के उच्चारण का एक शरीरी चक्रा है फिर मुक्त हो जाता है । पत्रमन्त्रिके चक्रोंमें सुक्त ध्यानके प्रथम दो श्रेणियों सम्प्रदाय और अष्टम दो श्रेणियों सम्प्रदाय समाधि कहा जा सकता है ।

मन्त्र ध्यानके चार उदाहरण हैं ।

१ आशा शक्ति पत्र-इप मोहके दूर होनेसे जो मुक्त है—मिथ्या भावनाका समाप्त होता है ।

२ निराशा-शक्ति पत्र गतिसे उत्पन्न रहस्य शक्ति ।

३ सुख शक्ति सुखके सम्पन्नसे उत्पन्न शक्ति ।

४ अस्वस्थ-शक्ति उत्पन्नके अस्वस्थसे उत्पन्न शक्ति ।

मन्त्र-ध्यानके चार शास्त्रमन्त्र हैं—१ वाचना पठना २ पचकना पूजा ३ परिपक्वता बोद्धव्यता ४ अनुभूति चिन्ता ।

मन्त्र ध्यानकी चार अनुभूति है—

१ एकत्वानुभूति न भेदका है ऐसी भावना ।

२ अनित्यानुभूति सब समान अनित्य है ऐसी भावना ।

३ अस्वरूपानुभूति सुख कोई भाव नहीं है ऐसी भावना ।

४ अकारणानुभूति बीच अकारण परिपक्व कर रहा है ऐसी भावना ।

सुक्त ध्यानके चार उदाहरण हैं—

१ अस्वस्थ ध्यानका समाप्त कह जानेमें अस्वस्थ ध्यान ।

२ अस्वस्थ सुक्त ध्यानके विषयमें मुक्त न होनेका भावनाका समाप्त न होनेका ।

३ विवेक देह और आत्माका परिपक्व ज्ञान-ध्यान ध्यानका समाप्त ।

४ अनुभव शरीर और उपकरणोंके निमित्तता ।

शुक्ल-ध्यानके चार आलम्बन हैं—

- १ क्षमा सहन करना, अक्रोध ।
- २ मुक्ति निर्लोमता ।
३. मादेव निरभिमानता ।
- ४ " सरलता ।

शुक्ल-ध्यानकी चार अनुप्रेक्षाएँ हैं—

- १ अनन्त-श्रुति-अनुप्रेक्षा भव परम्परा अनादि है, ऐसी भावना ।
- २ विपरिणामानुप्रेक्षा सब पदार्थ परिणमनशील है, ऐसी भावना ।
- ३ अशुभानुप्रेक्षा मसारके सब मयोग अशुभ है, ऐसी भावना ।
- ४ अपायानुप्रेक्षा आश्रव बन्धनके हेतु है, ऐसी भावना ।

धर्म्य-ध्यानके लिए श्रद्धा, स्वाध्याय और भावना अपेक्षित है, यह उसके लक्षण था और अनुप्रेक्षाओंसे फलित होता है । शुक्ल-ध्यानके लिए आत्माके स्वभावका अवगाहन और भावना अपेक्षित है, यह उसके लक्षण आदिसे ज्ञात होता है । भावनाएँ वारह हैं—१ अनित्य, २. अक्षय, ३ ससार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशोच, ७ आश्रव, ८ मवर, ९ निर्जरा, १० धर्म, ११ लोक-सुस्थान, और १२ वीचि । चार भावनाएँ और हैं—१ मैत्री, २ प्रमोद, ३ करुणा, ४ मध्यस्थ ।

इनमे प्रथम चार भावनाएँ धर्म्य-ध्यानकी अनुप्रेक्षाएँ हैं । अनन्तश्रुति-ससारानुप्रे ही स्थिर अम्यास है । विपरिणामको लोक, अपायको आश्रव और अशुभको अशोच भावना कहा जा सकता है ।

ज्युत्सर्ग

तपो-योगका १२वाँ प्रकार ज्युत्सर्ग है । इसका अर्थ है—देहाध्यामकी मुक्ति, शरीरकी स्थिरता ।

महाभक्त और तपोयोगमे पतजलिके योगके छह अंग ममादिष्ट हैं । प्राणायाम और धारणा—ये दो छेप रहते हैं । प्राणायामके विषयमे

जीन जावना क्या है ? यह बतलाया जा चुका है ।

भारवाके विषयमें कोई मतभेद नहीं है । चाटक भी बोगका एक रूप है । इसमें चित्त और बुद्धि दोनों एकत्र स्थित किये जाते हैं । यहाँ भगवान् महावीरकी ध्यान मन्त्राका उल्लेख हुआ है । यहाँ उन्हें एक पुरुषके निविष्ट बुद्धि और अनिमिषमयन कहा गया है ? नासात्त बुद्धिको भी बहुत मन्त्रधर्य माना है । नासात्त हैमचन्द्रने विनमुद्राकी विशेषता बतलाते हुए लिखा है— विनेत्र ! बापकी और-बाप विशेषताओंको छीकना ही हुए रहा पर अन्तरीयिक हैबोने पयकासन चिथिक करीर और नासात्त बुद्धि बाकी बापकी मुद्रा भी नहीं थीकी । उत्तरगती प्रथोने मृदुटि काग ककट नाभि साक और हृदय-रमक भादि नाटनावाकी कर्षा मिलती है । भगवान् महावीरने साधनाका जो क्रम प्रस्तुत किया उसमें कनकन और ध्यान इन दोनोंका सम्मिश्रण था । यह साधना-क्रम न देवक कष्ट-सहन था और न कष्टसे पराजय कर चित्तको एकाग्र करकेका प्रयत्न था । साधकके किये सहिष्णुता और एकाग्रता दोनों आवश्यक होती हैं । इस साधना-क्रममें योगाका धुमेक था । समय-परिवर्तनके साथ क्रममें परिवर्तन ही गया । ध्यानका स्थान नीच हो गया और अनसन साधनाके सिंहासन पर था बँठा । इसीलिए अन्तराली कौम जीन-साधनाको देवक कष्टमय या मत्स्यक कठोर मानते हैं ।

भगवान् महावीरका साधना-कार्य बच और तेरह पसरा है । छहम अनसन आसन और ध्यानकी स्पर्श-ही रही है । भगवान् इन मन्त्रिम हीन ही अनचाह विन भीकत-पानी ग्रहण किया और उकई नासन निषेध—अपोस्तन प्रतिमाद कई ही बार स्वीकार की ।

बारह बार एक रात्रिकी प्रतिमा स्वीकार की । भगवान्को यह केवल काल उत्पन्न हुआ एक वे उकट आसनव बँडे थे ही विनका उपवास था और ध्यानान्तरिकाम बतलाय थे । भगवान् जब बुद्ध बुद्धिके पैदाक प्रथम विहार कर रहे थे एक उन्होंने पोसाक नामक नीचमें हीन विनका उपवास

क्रिया । कायोत्सर्ग मुद्रा की । उनका शरीर आगेकी ओर कुछ झुका हुआ था । दृष्टि एक पुद्गलपर टिकी हुई थी । आँखें अनिमेष थी । धरोर प्रणिहित था, इन्द्रियाँ गुप्त थी । दोनों पैर मटे हुए थे और दोनों हाथ प्रलम्बित थे । इस मुद्रामें भगवान्ने एक रात्रिकी महाप्रतिमा की ।

सानुर्लघु ग्राममें भगवान्ने भद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा प्रतिमाएँ की । पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इन चारों दिशाओंमें चार चार पहर कायोत्सर्ग किया जाये वह भद्रा प्रतिमा है । इसकी आराधना करने-वाला पहले दिन पूर्वाभिमुख हो कायोत्सर्ग करता है और रातको दक्षिणाभिमुख हो कायोत्सर्ग करता है । दूसरे दिन पश्चिम दिशाभिमुख और रातको उत्तराभिमुख हो कायोत्सर्ग करता है । भगवान्ने भद्राके अनन्तर ही महाभद्रा प्रतिमा प्रारम्भ कर दी । उनमें चारों दिशाओंमें एक दिन-रात कायोत्सर्ग किया जाता है । भगवान्ने चार दिन तक इसकी आराधना की । इसके अनन्तर सर्वतोभद्राका प्रारम्भ किया । इसमें दस दिन-रात लगे । चारों दिशाओंमें चार दिन-रात, चारों विदिशाओंमें चार दिन-रात और एक-एक दिन-रात ऊँची और नीची दिशाके अभिमुख हो कायोत्सर्ग किया । इस तरह सोलह दिन-रात तक भगवान् मत्त ध्यानरत और उप-वासी रहे ।

स्थानागमें इनके अतिरिक्त सुभद्रा प्रतिमाका उल्लेख और मिलता है । उसका अर्थ आज ज्ञात नहीं है, वृत्तिकार अभयदेव मूरिको भी ज्ञात नहीं था । इनके अतिरिक्त समाधि प्रतिमा, उपवान-प्रतिमा, विधेक-प्रतिमा और व्युत्सर्ग-प्रतिमा, क्षुत्कामोद-प्रतिमा, महतीमोद-प्रतिमा, यवमध्या और वज्रमध्या आदि प्रतिमाओंका उल्लेख मिलता है । इनकी परम्परा लुप्त है और हृदय अज्ञात ।

भगवान् महावीर प्रायः मौन रहते थे । आसनस्थ होकर ध्यान करते । वे ऊँची-नीची और तिरछी तीनों दिशाओंमें स्थित पदार्थोंको अपना ध्येय

।

योगीके लिए निम्न-विषय भी आवश्यक है । भगवान्‌न साधना-कार्य केवल एक मुहूर्त-भर की है ।

बनबान ग्रहर भर समय निश्चिन्ता-बुद्धि टिकाकर ध्यान करते हैं । भगवान्‌के शिष्योंके लिए भी ध्यान को हीपगत विशेषतः प्रचुरतासे प्रयुक्त हुआ है । इसकी बड़ी परम्परा कसे कृत्याय हो गयी यह एक सम्भवनीय विषय है ।



जैन योग और आसन

जैन-साधना-पद्धति बहुत प्राचीन है। उसके बारह अंगों (तपस्याके बारह प्रकारों) का विकास भगवान् महावीरके समयमें ही हो चुका था। पाँच सत्र भी उसी समय विकसित हो चुके थे। इस पद्धतिसे शरीर-विजय, विजय, मनोविजय, कर्माय-विजय और आत्म-विजय के अनेक प्रक्रियाओंका क्रिया जाता था। इसे सदा प्रभाव ही कहना चाहिए कि वे प्रक्रियाएँ आज विस्मृत-सी हो रही हैं। एक दिन मैं अपने कनिष्ठ-साधुओंको आसन-आदिके बारेमें बता रहा था। उस समय एक श्रावक आया। उसने हमारी चर्चा सुनी। विषय समाप्त होनेपर बोला, क्या अपने जैन-साहित्यमें भी आसनोकी चर्चा है? मैंने कहा, भगवान् महावीर स्वयं बहुत आसन करते थे। उनके साधु भी बहुत आसन करते थे। जैन-साहित्यमें आसनोपर काफी लिखा गया था। पर परम्परा लुप्त होनेके साथ-साथ वह विस्मृत हो गया। प्रकीर्ण रूपमें आज भी काफी मिलता है। उत्तराध्ययनके कार्यकालमें उसे संकलित करने और तद्विषयके साहित्यका अध्ययन करनेका हमें अवसर मिला। वहाँ इस विषयकी विस्तारसे चर्चा की गयी है। उसका सारांश इस निबन्धमें किया जा रहा है।

जैन-योगकी अनेक शाखाएँ हैं — दर्शन-योग, ज्ञान-योग, चारित्र्य-योग, स्वाध्याय-योग, श्रम-योग, भावना-योग, स्थान-योग और शमन-योग। यहाँ मैं केवल स्थान और शमन-योगके बारेमें ही बातें बताऊँगा।

स्नान योग

योगनियुक्तके भाष्य (१५२) में स्नानके तीन प्रकार बतलाय गये हैं—१ ऊर्ध्व स्नान २ निषीकन-स्नान ३ क्षयन स्नान । आश्विन शिवकोटिने चार प्रकारकी क्रियाबोकर निर्देश किया है—१ स्नान क्रिया २ वासन-क्रिया, ३ क्षयन क्रिया ४ गमन क्रिया ।

स्नानका अर्थ है गणिकी विनयिता बानी स्नान करना । महर्षि पतञ्जलि योगके अठ बनेष हीस्य अर्थ बतलाया है । वासनका अर्थ है—बस्ना । यह अर्थ हैते और हीते—हीनो अवस्थाभय किया जाता है, हीनो वृत्तिते वासनकी अपेक्षा स्नान शब्द अधिक अर्थ-सूचक है ।

ऊर्ध्व स्नान अर्थे रहकर क्रिमे बानेवाके स्नान ऊर्ध्व-स्नान कहलाते हैं । इसके मुख्य प्रकार सप्त हैं—१ साधारण—प्रभावित अग्ने वादिके सहारे निरवक होकर अर्थे रहना । २ समिचार—बहुत स्थित हो वृत्तिते सुधर स्नानम वाकर एक पहर एक दिन वादि निरवक कास तक निरवक होकर अर्थे रहना । ३ समिच्छ—बहुत स्थित हो वही निरवक होकर अर्थे रहना । ४ व्युत्थान—आयोत्थान करना । ५ समपाद—पीठकी क्षयवधिन स्थापित कर (सटाकर) अर्थे रहना । ६ एक पाद—एक पादे अर्थे रहना । ७ पृथ्वीर्द्धान—जहाँ हुए योगके पथोकी भाँति वहीकी पैसाकर अर्थे रहना ।

निषीकन स्नान अर्थे रहकर क्रिमे बानेवाके स्नानोकी निषीकन स्नान वा वासन कहा जाता है । इसके अनेक प्रकार हैं—१ निषीकन २ पीठ क्षयन ३ पयासन ४ अक्षयिकासन ५ योगीहिका ६ यकर-शुद्ध ७ कुम्भुटासन ।

योग-शास्त्रम समस्तस्नान कुम्भुतासन अक्षयिकासन अस्तिक्रासन हीनस्नान हीन निषीकन ह्य निषीकन अक्षयिका हीन अक्षयिका है । निषीकनके पाँच प्रकार हैं— १ अक्षयिका—कुम्भोकी अर्था रहकर अर्था । २ योगीहिका—नासको रोहते समय विद्य वासनसे हीन है अक्षयिका

४ दिवह् सुवचन—सुव विरह्य ही उच्च समय वाला ।

५ अथ प्रामवचन—वहाँ अवस्थित हो वहिं सुखरे वीचन निखान वाला ।

६ प्रत्यागमन—सुखरे वीचनें वाकर वापस वाला ।

आखनोकी चर्चा मुकापना आलाभन योगशास्त्र वद्यस्तिकक अमितवतिभावकाचार वादि मन्मकालीन प्रबोध ही नहीं हुई है किन्तु चववती स्यागाय वादि प्राचीन जगसुभोका तथा वसाधुतस्कन्ध बृहत्कम्प वादि क्व सुभोम भी हुई है । आखन प्रक्रिया शारीरिक और मानसिक दोनो दृष्टिसे बहुत उपयोगी है । उसे पुनर्विकसित करना हमारा कर्तव्य है ।



कायोत्सर्ग और ध्यान

शरीर चञ्चल है और मन भी चञ्चल है। चञ्चलताको छोड़ दें तो जिंदा भी नहीं जा सकता। वह बहुत बढ जाये तब भी जीनेमें कठिनाई है। जीवनकी नफलता इसी अर्थमें है कि चञ्चलताके साथ स्थिरताका मन्तुलन हो। कायोत्सर्ग और ध्यान दोनों स्थिरताके रूप हैं। कायाको स्थिरता कायोत्सर्ग है और मनकी स्थिरता ध्यान। जो व्यक्ति इंद्रिय और मनकी बीमारोको भेदकर आत्माके सान्निध्यमें रहना चाहता है, वह स्थान, मौन और ध्यानके द्वारा अपनी प्रवृत्तियोंका विसर्जन करता है। स्थान . कायाकी प्रवृत्तिका विसर्जन, कायोत्सर्ग या कायगुप्ति। मौन वाणीकी प्रवृत्तिका विसर्जन, वचनगुप्ति। ध्यान मनकी प्रवृत्तिका विसर्जन, मनोगुप्ति।

कायोत्सर्ग

कायोत्सर्गका शाब्दिक अर्थ है—शरीरका त्याग। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि बीतेजो शरीरका त्याग हो नहीं सकता। शरीरके त्यागका अर्थ है शरीरकी चञ्चलताका विसर्जन, शारीरिक भ्रमत्वका विसर्जन—शरीर मेरा है इस भावनाका विसर्जन। प्रवृत्ति और भ्रमत्व ये दोनों शरीर और मनमें समाप्त उत्पन्न करते हैं। वह अनेक प्रकारकी शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

शरीर-शास्त्रकी दृष्टिसे शरीरकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके परिणाम इस प्रकार हैं—

प्रवृत्ति (जल) के परिव्याप्त

- १ स्नायवबोध स्नायु शक्ति कम होती है ।
- २ केन्द्रिक एक्टिव स्नायवबोध कम होता है ।
- ३ केन्द्रिक एक्टिविटी वृद्धि होनेपर उष्णता बढ़ती है ।
- ४ स्नायु तन्त्रमें क्लान्त आती है ।
- ५ एतन्में प्राणवायुकी भाषा कम होती है ।

विहृत्ति (आराम) के परिणाम

- १ एक्टिविटी पुन स्नायु शक्तिमें परिवर्द्धन होता है ।
- २ केन्द्रिक एक्टिविटी कमाल कम होता है ।
- ३ केन्द्रिक एक्टिविटी कमीसे उष्णता कम होती है ।
- ४ स्नायुतन्त्रमें ताकती आती है ।
- ५ एतन्में प्राणवायुकी भाषा बढ़ती है ।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी कायोच्छेद कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

स्वाभाविक उपाय और कर्मोच्छेद—मन अतिरिक्त और कठोरता बढ़ा सम्बन्ध है । उनकी सामान्यनिहीन वृत्तिसे भी अवस्था उत्पन्न होती है यही स्वाभाविक उपाय है । कठोर और मनकी सक्रियताका सम्बन्ध रहता, प्रवृत्तिकी शक्तिता या सक्रियता मानसिक भाव—ने उसके मूल कारण है । हम मन-मन प्रवृत्तिना करते हैं अर्थात् कठोरको किसी हृदये कमसे कमते हैं और मन कही हृदये और भटकता है तब स्वाभाविक उपाय बढ़ता है । हम प्रवृत्तिना करना हीन चार्जे—कठोर और मनकी एक ही कामना उत्पन्न करनेका सम्भाव्य कर के तो स्वाभाविक उपाय मन्में का मनसर ही न दिके ।

जो लोग इस स्वाभाविक उपायके विचार होते हैं वे कठोर और मानसिक स्वास्थ्यसे वंचित रहते हैं । वे लोग अल्प भाग्यवादी हैं जो इस उपायसे मन्त रहते हैं ।

उपाय उत्पन्न करनेमें चपका या बहा हुए हैं । सम्भाव्यवादिनों

उसके सात प्रकार बतलाये हैं—

- १ इहलोक भय—मनुष्यको अपनी ही जाति—मनुष्यसे होनेवाला भय ।
- २ परलोक भय—मनुष्यको विजातीय—पशु आदिसे होनेवाला भय ।
- ३ आदान भय—धन-विनाशका भय ।
- ४ अकस्मात् भय—काल्पनिक भय ।
- ५ आजीविका भय—आजीविका कैसे चलेगी—इस प्रकारका भय ।
- ६ मरण भय—मृत्युका भय ।
- ७ अश्लाघा भय—अपयशका भय ।

ये भय मनुष्यके जीवनमें व्याप्त रहते हैं । इनके द्वारा वह स्नायविक तनावसे बुरी तरह आक्रान्त होकर अमान्तिमय जीवन जीता है । जिम्मे अमयकी आराधना की है, उसे कोई कष्ट नहीं होता । भयभीत व्यक्ति पल-पलमें कष्ट पाता है । जिम्मे अमयकी आराधना की है, वह जीवनमें एक बार मरता है । भयभीत मनुष्य एक दिनमें कई बार मरता है । भय और हिंसामें गहरा लगाव है । जहाँ भय है, वहाँ निश्चित रूपसे हिंसा है । जिम्मे अ-भय किये बिना अहिंसा हो ही नहीं सकती ।

अनियन्त्रित भयमें अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । मनोविज्ञानका सिद्धान्त है कि विद्योगका भय जागृत होनेपर मनुष्य स्नायु-विकारसे ग्रस्त हो जाता है । यह दूसरोपर अत्याचार करने व उन्हें अपयश बनानेमें रस लेता है ।

येल विश्वविद्यालयमें भयसे सम्बन्धित कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं । उन्हें पढ़कर हम यह जानते हैं कि भय हमारे शरीर और मनको कितना प्रभावित करता है । भयसे ये शारीरिक परिवर्तन देखे जाते हैं—थिलका घसकना, नाडीका तेज चलना, मुँह या गला सूखना, काँपना, हृदयकोषमें पसीना आना और पेटका अन्दर धँसना । मनपर भी यहरी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जैसे—विस्मृति, मूर्छा और पीडाकी तीव्र अनुभूति होना ।

स्थानाग सूत्रमें अष्टमयिक मृत्युके सात कारण बतलाये गये हैं । उनमें

मयात्मक अन्वयसाधन वसुधा एव निमित्त है।

रोगके सबसे पीडा बह जाती है। निम्न रोगीकी अपेक्षा मयाकाठ रोगीकी पीडाकी अनुभूति कई गुना अधिक होती है। मानसोपचारकी रोग-शैथिल्य स्थितिबोधन प्रयोग किये। उनसे उनकी पीडात्मक बहुत अन्तर आया। सबसे स्नायविक तनाव बहता है उससे पीडा तीव्र हो जाती है और कायोत्सवसे यह कम होता है तब पीडा भी कम हो जाती है।

श्रीव अमिताभ माया श्रीव राम द्वेष भूषा श्रीव आदि मानसिक आनेगोसे भी स्नायविक तनाव बहता है। कायोत्सवसे उन आनेगोका कमन होता है और फलतः स्नायविक तनाव अपने आप दूर हो जाता है।

कायोत्सव कैसे किया जाये ?—कायोत्सव खड़ी बठी और सौथी सीनी मशामोम किया जा सकता है। खड़ी मुद्राम कायोत्सव करनेकी रीति यह है कि कायोत्सव करनेवाला सीनी हाथोकी खुटकोठी बोर छटका दे उन्हें हीला छोड दे। पैरोको सब रेखाय रखे और सीनी पथोम चार अंगुलका बठार रख। सेव छारे अगोकी स्थिर रख और स्थिरिक नरे। किसी भी अगमें तनाव न रख।

सीनी मुद्राम कायोत्सव करनेवाला पदासन वा सुखासनमें बँठे। हाथो को वा सो खुटकोपर टिकाये वा बायीं हथेलीपर दायीं हथेली रखकर अङ्ग में रखे। सब अगोको स्थिर और स्थिरिक बना से।

सौथी मुद्राम कायोत्सव करनेवाला पहले सीना कैड जाये। शिरस केकर पर उनके अङ्गुलीकी पहुँके धान फिर अगल सन्धे स्थिरिक करे। हाथो तथा पैरोको परस्पर सटाने हुए न रखे। स्वास उच्छ्वास समयात्मक से किन्तु अन्धा से। मगकी स्वास-उच्छ्वातमें कदा एकत्र वा विचार कृत हो जाये।

मगकी धान्य व स्थिर करनेके लिए शरीरको स्थिरिक करना बहुत आवश्यक है। प्रयातसे यथकता बहती है। स्थिरता अग्रफलसे आती है।

शरीर उत्तना गिथिल होना चाहिए जितना किया जा सके। वह प्रतिदिन बाघ घंटा गिथिल हो सके तो मन अपने-आप शान्त होने लगता है। शिथिलीकरणके समय मन पूरा खाली रहे—कोई चिन्तन न हो, जप भी न हो। यह न हो सके तो ओ-अर्हम् — जैसे किसी शब्दका ऐसा प्रवाह हो कि बीचमें कोई दूसरा विकल्प न आये। श्वासकी गिनती करनेसे यह स्थिति सहज ही बन जाती है।

कायोत्सर्गका कालमान—कायोत्सर्गकी प्रक्रिया कष्टप्रद नहीं है। उससे शारीरिक विश्रान्ति और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। इसलिए वह चाहे जितने लम्बे समय तक किया जा सकता है। कम पन्द्रह-बीस मिनट तो करना ही चाहिए। कायोत्सर्गमें मनको श्वासमें लगाया है इसलिए कालमान श्वासकी गिनतीसे भी किया जा सकता है, जैसे सौ श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग, दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ, हज़ार श्वासका कायोत्सर्ग आदि-आदि।

कायोत्सर्गके फल—कायोत्सर्गका मुख्य फल है—आत्माका सांनिध्य प्राप्त करना। शारीरिक फल है—मानसिक सन्तुलन, बौद्धिक विकास और शारीरिक स्वच्छता। मानसिक स्वच्छता, स्नायुतनाव व कफसे उत्पन्न रोगोंके लिए यह अमूल्य रसायन है।

आचार्य भद्रबाहुने कायोत्सर्गके पाँच फल बताये हैं—

१ **दीहिक जडताकी शुद्धि—**श्लेष्म आदिके द्वारा देहमें जडता आती है। कायोत्सर्गसे श्लेष्म आदि दोष मिट जाते हैं। अतः उनसे उत्पन्न होने-वाली जडता भी नष्ट हो जाती है।

२ **बौद्धिक जडताकी शुद्धि—**कायोत्सर्गमें चित्त एकाग्र होता है। उससे बौद्धिक जडता नष्ट हो जाती है।

३ **सुख-दुःख विविधता—**सुख-दुःख सहनेकी शक्ति प्राप्त होती है।

४ **शुद्ध भावनाका अभ्यास** होता है।

५ **ध्यानकी योग्यता** प्राप्त होती है।

ध्यान

चेतनाके दो रूप हैं—बल और स्थिर। बल-चेतनाको चित्त और स्थिर चेतनाको ध्यान कहा जाता है। स्थिरताके दो रूप बनते हैं—एकाग्रता और निरोध।

एक मस्तुम चित्तको संकल्प करनेका नाम एकाग्रता और उसे सवथा चिन्तन-शून्य करनेका नाम निरोध है। चित्तकी एकाग्रता और चित्तका निरोध ये दोनों ध्यान कहलाते हैं।

ध्यानकी विधि—ध्यान करनेसे पहले शरीरकी स्थिर करें। यह विकसुक न हिले-डुले। फिर दो-तीन मिनट उसे सूचना दें कि यह चिन्तित हो रहा है। फिर यह सूचना दें कि स्वास चिन्तित हो रहा है। शरीर और स्वास दोनों चिन्तित हो जायें तब यह सूचना दें कि मन चिन्तित हो रहा है। जब मन चिन्तित हो रहा हो उस समय वा तो चिन्तन सवथा बन्द कर दें वसा न कर सकें तो जहनु सिद्ध जादि वो भी चढ़ हो उस समयको याद कर सकके अचपर मनको एकाग्र करें। जो ध्यान है उसे प्रत्यक्ष देखनेका प्रयत्न करें। अपम शान्तीकी पुनरावृत्ति की जाती है। किन्तु ध्यानम उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जाती उनके अचको प्रत्यक्ष करनेका प्रयत्नाइ किया जाता है।

पिबबत राजाका मन्त्री था। उसे बहुत सम्मान प्राप्त था। एक दिन राजाको अक्षर सन्देश हो गया। उसे मन्त्री सबसे हटा दिया। साथी सम्पत्ति छीन ली। जब यह जन और सम्मान दोनोंसे रहित हो गया। अपने कुटुम्बको लेकर वह बहूषि बल पडा। मागने एक मुनि मिले। वे ध्यान मुद्राय सजे वे। मन्त्रीने सन्देश बन्धना की। मुनिने ध्यान पूरा किया। मन्त्रीने पूछा कुसोव। सन्तुष्ट कम लीथ हो वसा उपाय बतलाए। मुनिने कहा कुब निरवमके बिना देसा उपाय हाथ नहीं लवता। मन्त्री बोला कुसोव। कमका विपाक देस चुका है। क्या जब भी कुब निरवम नहीं होमा ? मुनिने ससकी प्रबल इच्छा देसी और मन्त्री

ध्यानमें सब दृग् दूर हो जाते हैं। पर यह किं छिपा जाये भगवत १—
 मन्त्रीने पूछा। मन्त्रिने कहा, ध्यान करनेवाला पर ग इतरां ४१५२
 कर बैठे। ज्ञाने वा तो मुँसे दृष्टि हा या जयमुये। वे रार गुन्दी २१ ना
 मानमिक कल्पनामें उन्हे बही नामाग्रपर वेन्द्रिन तिया जाये।

ध्यान कालमें आमन बहृदासी नही छिन्नु गुग्यागन २१ना चाहिण।
 ध्यानके लिए मामाम्यत पयामन, परंशामन, वागोन्गार्गान आदि ज्ञान
 सुखाये गये हैं। किन्तु ये ही ज्ञान ज्ञान चाहिण, जेमा जायत नही है।
 आचार्य दुमचन्द्रने लिखा है—जिम ज्ञानमें बैठनेपर मन निश्चल २१,
 वही आसन करणोप है।

येन केन सुग्यासीना विद् मुनिश्चल मन ।

तत्तद्वच विधेय श्याम मुनिमिषेन्पुत्रामनम् ॥ (ज्ञानाणंद)

ध्यायका कल—इने स्पष्ट करनेके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है—
 पुराने जमानेकी बात है। भगवत देसमें देवरापर नामका नगर था। वहाँ
 दो मित्र थे। एकका नाम राम था। वह बनियेका बेटा था। दूसरेका
 नाम था नागदत्त। वह ब्राह्मणका बेटा था। उन दोनोंमें बहुत प्रेम था।
 वे सुखसे रह रहे थे। एक दिन वहाँ राज्य-विद्रोह हो गया। पार्श्व
 ओर लूट मच गयी। तब वे दोनों वहाँमें दौड़े और दक्षिणापथकी
 ओर चले गये। एक बार वे दोनों काठ लानेके लिए जगल गये। वहाँ
 महाबल नामके साधु कायोत्सर्ग मुद्रामें खड़े थे। ध्यानशील होनेके कारण
 वे पर्यतकी भाँति अडोल थे। उन्होंने साधुको देखा। यह जीवनमें पहला
 ही अवसर था। वे उन्हें अपलक देखते रहे। थोड़ी देर बाद एक बटा-
 सा साँप बिलमें-में निकला और सीधे साधुके पास आ पहुँचा। उन्हे उस
 वापस बिलमें धुम गया। साधु अब भी वैसे ही खड़े थे। ध्यानमें जग
 भी विचलित नहीं हुए। उनके शरीरमें विष भी नहीं व्यापा। राम और
 नागदत्तको बहुत आश्चर्य हुआ। साधुने कायोत्सर्ग पूर्ण किया। वे साधु-
 के पास गये, धन्यना की और बोले—भगवन्! मैंने आपकी काठ

कायोत्सर्ग और ध्यान

तो मानपर कसका असर नहीं हुआ ? आप इस प्रकार कायोल्लेखन करते हैं क्या आपको सर्व-गामीसे कह नहीं होता ? साबुन कहा महानुभावी । जो ध्यान-कोष्ठम स्थित होता है वह बाहरी स्थितिसे प्रभावित नहीं होता । सर्व-वरमी भाविते भावित नहीं होता । वह मरत अनुभव ह ।

इस ध्यान-कोष्ठम शीत कहरका कोई असर नहीं होता और न तेज हवासे उद्द्विग्न भूमि भी अपना प्रभाव बिखा पाती ह । नयकर क्रीष्णाहूक नहीं बाधा नहीं डाल सकता और चाँप भावि विरले वस्तु नहीं पीडा उत्पन्न नहीं कर सकत । इन सापेक्षिक कहानी क्या बात करत हो पुन ? नहीं मानसिक कह भी नहीं पहुँच पाते ह ? ईप्सा विषाद शोक भावि विचल मानसिक दृष्ट ह न सब ध्यानलीन ध्यनितके सामन निर्बन्धि बन पाते हैं ।



ध्यान

मनकी दो अवस्थाएँ होती हैं—गत्यान्मक और स्थित्यान्मक। गत्यान्मक अवस्थाको मन और स्थित्यान्मक अवस्थाको ध्यान कहा जाता है। ध्यान करते समय मन मकल्पोंमें भग्न जाना है। एक-एक कर पुरानी स्मृतियाँ उभरने लग जाती हैं। चञ्चल प्रधन होना है, टुकड़ा क्या कारण है? जब मनकी प्रवृत्ति होती है तब उतनी चञ्चलता नहीं होनी जिनकी उसको स्थिर करनेका प्रयत्न करनेपर होती है। हम गहराईमें जायें तो पायेंगे कि चेतना चञ्चल नहीं होनी। मन चेतनाका एक अंग है वह भला कैसे चञ्चल हो सकता है। वह वृत्तियोंके चापमें चञ्चल होना है। वृत्तियोंका जितना चाप होता है उतना ही वह चञ्चल होता है और वृत्तियाँ जिनकी शान्त या धीण होती हैं उतना ही वह स्थिर होता है, धानी ध्यान होता है। ता जल स्थिर पड़ा है। उसमें एक डेला फेंका और वह चञ्चल हो गया। यह चञ्चलता स्वाभाविक नहीं, किन्तु बाह्यके सम्पर्कमें उत्पन्न है। ठीक इसी प्रकार मनकी चञ्चलता भी स्वाभाविक नहीं किन्तु वृत्तियोंके सम्पर्कमें उत्पन्न होती है। मनकी चञ्चलता एक परिणाम है। वह हेतु नहीं है। उसका हेतु है—वृत्तियोंका जागरण।

वृत्तियाँ दो प्रकारकी होती हैं—सत् और असत्। असत्से सत्की ओर जाना पहला चरण है और दूसरा चरण है असत्को धीण करना। असत्में मन चञ्चल रहता है, सत्में शान्त और असत्को धीण करनेपर वह अतिमात्र शान्त हो जाता है। इस मारी प्रक्रियाको मनोगुप्ति कहा जाता है। गुप्त मनकी तीन अवस्थाएँ हैं—१ कल्पना, विमुक्त, २, ममत्व-

प्रतिष्ठित १ आत्माराधन ।

विमुक्त कल्पनावाक्य, समन्वये प्रतिष्ठितम् ।

आत्माराधन मन्त्रवृत्ति मन्त्रोपस्थितिविधौ विद्यते ॥

कल्पनाविमुक्त मन्त्रो एक साथ लाती गहो क्रिया वा चरण ।
उभे अन्त कल्पनावाक्य मन्त्र करनेके लिए उक्त कल्पनावाक्य आत्ममन्त्र
क्रिया जाता है । इन कल्पनावाक्य विद्यार मन्त्र प्राचीन साहित्यमें
मिलता है ।

कल्पना कर कि हृदय कमल है । उसके चार पत्र ह । बीचमें एक
कविका ह । चार पत्रा और कविकावर क्रमशः क सि आ उ सा
क्रिया हुआ ह । प्रत्येक पत्रार व्योमियम ह और यह प्रवक्षिमा करता हुआ
मून रहा है । यह कल्पना पुष्ट होनी थी दूसरी कल्पनाएँ अपन-आप मिलीन
हो जायगी ।

दो नासाब दो बाँध दो काम और एक मुक्त—य साथ २-अ है ।
इनपर क्रमशः य भी क रि ह ता क—इस मन्त्रवृत्तिके साथ
ध्यान क्रिया जाय । मन्त्र और स्वामिके ध्यान साथ-साथ ही । इससे मन
उभ कल्पनावाक्ये मुक्त ही जाता है । इस प्रकार संकटा उपाय साधनाकी
कन्वी परम्पराय प्राप्त होत ह ।

समन्वय प्रतिष्ठित वृत्तियाँ सभी राखी है । न निमित्तका मोह पाकर
उत्तचित्त होती ह और चमर जाती है । चमकी उत्तचमकाका बहुत मन्त्र
निमित्त ह विपमना । कन्व-कन्व मन्त्र विपमनाके भाव आते है उक्त-उक्त
वक्त कन्वक कन्वी और विद्यित्त हो जाता ह । अमुक्त ध्यनित्तन मन्त्र
समन्वय क्रिया है और अनुदने अन्वाम । समन्वय और अन्वामकी स्मृति
होती ही मन्त्र कन्वक ही उठता है । किन्तु विद्यका मन्त्र समन्वय और अन्वाम
वाक्यकी सहज नहीं करता उक्त होनामे आत्मसे बाह्य मानता है उक्तका
मन्त्र समन्वय प्रतिष्ठित रहता है । उक्त समन्वय और अन्वामकी स्मृति ही
नहीं हाती उक्त यह उनके कारण कन्वक अन्वाम वा अन्वाम कन्व हो

सकता है ? इस प्रकार राग-द्वेषजनित जितनी विषमताएँ हैं, उनका ग्रहण नहीं करनेवाला मन समतामें प्रतिष्ठित होता है ।

आत्माराम यह गुप्त मनकी तीसरी अवस्था है । इसमें चेतनाके अतिरिक्त कोई बाह्य आलम्बन नहीं होता । मन आत्मामें विलीन हो जाता है । वह कपाय (बाहरी रंगों) से मुक्त होकर शुद्धोपयोग (शुद्ध-चेतना) में परिणत हो जाता है । इस स्थितिमें इन शब्दोंमें भी समझाया जा सकता है कि यहाँ शुद्ध चेतनासे भिन्न मनका कोई अस्तित्व ही नहीं रहता ।

ध्यान और शून्यता ध्यान अवस्था शून्य अवस्था है, किन्तु इस तथ्यको अनेकान्तकी भाषामें समझना चाहिए । ध्यानमें जितनी बाह्य विकल्पोंकी शून्यता होती है, उतनी ही आत्मिक जागरूकता बढ जाती है । इसीलिए आत्मा शून्याशून्य स्वभाव है । प्रश्न उठता है कि यदि मनको शून्य करना ही ध्यान है तो फिर नीद भी ध्यान है । नीदमें आन्तरिक जागरूकता नहीं रहती । वह स्वयं एक वृत्ति है, इसलिए वह ध्यान नहीं है । विचार-शून्यता भी ध्यान नहीं है । इसे ध्यान माना जाये तो मूर्च्छाको भी ध्यान मानना होगा और वह ध्यान नहीं है । वहाँ चेतनाकी विस्मृति है । ध्यान वह होता है जहाँ चेतनाकी जागृति हो ।

ध्यान तदात्मकता - ध्यान करनेवालेको तदात्मक होनेका अभ्यास बालना चाहिए, अर्थात् जिसका ध्यान करे उसके साथ एकात्मकता स्थापित करना चाहिए । क्रियाके साथ भी तदात्मकता हो तो वह भी ध्यान हो जाता है । जो बोले उसमें मनका योग साथ रहे तो वह बोलना भी ध्यान है । जो करे उसमें मनका योग साथ रहे तो वह करना भी ध्यान है । तन्मयतासे जो किया जाता है, वह सच्च फलदायी होता है । ध्यान करनेवाला ध्येयको सम्प्राप्तिके लिए अपने शरीर व मनको शून्य बना लेता है । ऐसा करनेपर ध्येय और ध्यातामें एकात्मकता हो जाती है । इसीको योग-शास्त्रके आचार्योंने एकीकरण, समाप्तीभाव, समापत्ति या समाधिकहा है ।

ध्यानकी सफलताके लिए बार बार सोचपर ध्यान देना चाहिए—

- १ बुद्धिबल—एसे बुद्धि मान-बलन देना चाहिए जो अनुमती हो ।
- २ यत्ना—अपनी क्रियाके प्रति आत्मान कुछ विश्वास होना चाहिए ।
अनिश्चय छीक होवी तो अवश्य परिश्रम कामवी एसी निश्चय हीनी चाहिए ।
- ३ सतत अभ्यास—आज किया कुछ नहीं एसी अनिश्चितता नहीं
होनी चाहिए । अभ्यास सतत करना चाहिए ।
- ४ मनकी एकाग्रताका कुछ
अभ्यास होना चाहिए ।



एकाग्रता

आजका नुम प्रगनिका पग है । प्रत्येक पदाव प्रगनिकोड है । इनाग मीलोंकी दूरो कुछ क्षणोंमें नापा जा सकतो है ।

गतिशीलता वस्तुका एक पक्ष है । दूमरा पक्ष है स्थितिशीलता । आज वस्तुका पहला पक्ष प्रबल है दूमरा निबल । आवश्यता है गति और स्थितिका सन्तुलन रहे । अनन्त आकाशमें देवल गतिमें वस्तु रखा जाइ टिकेगी आखिर स्थितिका भडाग लेना ही पडेगा ।

मानव-जीवनको यही दशा है । मानसिक चञ्चलता अधिक है, स्थिरता कम । प्राचीन आचार्यानि एकाग्रताको ध्यान बडा है । उसमें स्थिर ज्ञाप भी सरल हो जाता है ।

द्रोणाचार्य धिप्योसे पूछने गये—तुम क्या देख रहे हो ? उत्तर मिश्रना गया—यह, वह, अमुक और वं लक्ष्यकी पूर्तिमें अमफल होने गये । आत्रिण अर्जुन आया, उसमें पूछा—तुम क्या देखने हो ? उत्तर मिला—और कुछ नहीं, सिर्फ राधाकी देख रहा हूँ । वह अफल हुआ, उसने लक्ष्यको बीच डाला ।

मानसिक आवेग रोके बिना सन्तुलन नहीं रहता । बाहरी मद्योग उसे खीर बहा देते हैं । एकाग्रता आवेग और मानसिक अनिश्चिततापर विजय पानेका एक मार्ग है । एकाग्रताकी कला हस्तगत होनेमें योग कलाएँ हस्तगत हो जाती हैं । विद्यार्थियोंके लिए यह विधेय आवश्यक है । अनुष्ठानमहीनताका दुष्परिणाम किमीने छिपा नहीं है । एकाग्रताकी साधनामें सहिष्णुता, सतिसा, आत्मानुष्ठान आता है । इसलिए उसका

बीबलम्यायी मन्स्य ह । कोर ज्ञानकी पहारें मार डाले-बसा ह । मार ईर
 कोर्ड हो सकता ह ।

बहा परो खद्व मारबाहो मारस्य म्यागी व हु खद्वस्य

विद्याकी मारमनाके साथ बस्य—यज्ञा और मारकी मारमना
 अपेक्षित ह । ऐसा क्यता ह मार मारकी मारमनासे भी मारकी
 मारमना अत्यावस्यक ह । यज्ञाकी मारमना टूट गयी ह । मनुष्यकी
 अपनेपर भी विश्वास नही ह । इसीका ही परिणाम ह कि मनुष्यम
 मानता अन्ध मरता और मानसिक अस्थिरता बढ रही ह । इससे मरित
 मानके सिद्ध यज्ञा और एकाधता परम अपेक्षित ह ।



भाव-क्रिया और अनावेग

“मुक्ता भगुणिणो मुग्गिणा मया जागरति”

जो मूढ़ि नहीं होते वे मुक्ता होते रहते हैं और मुनि मुक्ता जागते रहते हैं । यह संतत जागरण ही भाव-क्रिया है ।

प्रत्येक प्रवृत्तिके तीन माधन हैं—मन, वाणी और शरीर । उनमें एक चेतन और दोनो जड़ हैं । वाणी और शरीरकी प्रवृत्तिमें मन भाव रहे तो वह सजीव बन जाती है, अन्यथा वह निर्जीव-नी होती है । जीवनकी प्रत्येक प्रवृत्ति भाव-क्रियात्मक होती चाहिए । हम चले तो हमारा मन चलनेमें लगे, हम बैठे तो हमारा मन बैठनेमें रहे । इसी प्रकार खायें तो खानेमें, बोले तो बोलनेमें और जो कुछ भी काम करे उगोमें मन बराबर साथ दे । ‘उत्तराध्ययन’में चलनेकी विधि बतलायी है, वह भाव-क्रिया है । वहाँ कहा गया है, जब तुम चलो तब मनको इन्द्रियोंके विपराने हटा लो, स्वाध्यायमें हटा लो । एकमात्र चलनेकी ही मानने लो । चलनेमें ही मनको केन्द्रित कर लो । एक क्रियामें शक्ति लगानेसे वह निश्चर जाती है अन्यथा वह विचर जाती है ।

जो करो वह तन्मय होकर करो, चित्तकी बही लगाओ । लक्ष्यको बही नियोजित करो, अध्यवसाय बैसा ही बनाओ । उनके लिए समर्पित हो जाओ, उसीमें उपयुक्त हो जाओ, तुम्हारी क्रिया भाव-क्रिया होगी, सजीव क्रिया होगी । अन्यथा तुम द्रव्य-क्रिया—निर्जीव क्रियासे चिपकते

रहोने । क्रियाके साथ मनुष्य साधारण होकर मात्र क्रिया बन जाती है । इसीलिए आचार्य हरिप्रसाद सभी क्रियाओंको योग माना है । अहोरात्रिक मुनि (जो एक कामके लिए भी प्रसाद नहीं करता) की तरह उत्तम जादू कर्मका कर्मि है फिर भी भाव क्रिया अहोरात्रिक है । इसका अन्त्यास चित्त वृत्तिकी रोक्कनका एक साधन है । हमारा अधिक समय भूत और भविष्य के जाता है । इस वक्तमानमें रहना सीप । भोजन करती समय अतीतकी याद और भावीका योजना विमानमें धूमवी है । वक्तमानमें रहना ही भाव क्रिया है और वह साधनाकी आधाररिखा है ।

कामधेय आचरणमें मनुष्य अपनेकी परिस्थितिके हानो सीप देता है । एक व्यक्ति पहले कामधेय नहीं जाता पर दूसरेके कुछ कहलपर कामधेयके अपनेकी बधा भी नहीं पाता । अपनेकी निर्दोष बधाते हुए कहता है—
 मैंने पहले कामधेय नहीं किया । क्या पीछे किया नहूँ कामधेय नहीं है ? केवल समयका अन्तर रहा कामधेय तो है ही । पहले कामधेय न आना अच्छा है पर पीछे भी न करना क्या हानिप्रद है । बीसाको बीसा करनेकी प्रवृत्ति मानवोय दुबलताके कारण उत्पन्न जगती है । पर साधक साधनाका पथ केन्द्र बलका है इसीलिए उसे रोक्कनका अन्त्यास करना चाहिए । अन्त्यासके साधन में है—
 १ कोई अत्रिय बात कह तो उत्तक उत्काल उत्तर न रहे ।
 जानसे उत्तम उत्तेजना जाती है उत्तमे बरनी बरती है इसीलिए उस समय ब्यासकी बन्द कर देना चाहिए ।
 २ उत्तर देतेपर निबन्धन न हो सके तो बहसि उत्काल उत्तरकर अन्त्यास बधा जाना चाहिए ।

यह विश्वास लेकर चलना शुरू है कि—

कर्मका पदमा उदयान, न सुदृष्टी जीव स्तु ।

बीज न मीमा होय सीवी दुःख भीव स्तु ॥

यदि यह विश्वास हो तो परिणम नवी क्रिया जाता है । परिणमका अर्थ है—स्वभाव परिवर्तन । साधना इसीलिए की जाती है कि उत्तमे

स्वभावमें परिवर्तन आता है। स्वभावमें परिवर्तन न आये तो साधनाका कोई मूल्य नहीं है। चरित्रमें दुःख आस्था होनेसे स्वभावमें परिवर्तन अवश्य है।



मोह-भ्रूह

परान अग्रिमम बड़के प्रागज्यम व्यापनी रचना की जाती थी असे घण्ट-भ्रूह बरह भ्रूह आदि-आदि । वे दुर्बल वा अजब होते ह । उन्हें लोड बिना गबकी सेना बाम नहीं बड सकती थी । साधना भी एक युद्ध है । समना प्रतिपत्ती है मोह । उसकी भ्रूह रचना बड़ी विफट ह । उसे लोड बिना कोई सावक जाये नहीं बड सकता । उसे लोडमसे पहले उसकी भ्रूह रचनाकी ममसना होता है ।

रचना कीविद्य—मोह एक रज्याम्यस है और निव्यामान उसका प्रचाल मनी । उसके दो पुत्र है ममकार और अहकार व दोनों सेनापति है । जो आलासे निज पदाथ है समम आत्मीयताका अभिनिषेध होता है वह ममकार है । जैसे—अप मकान मेरा बेटा म परिवार मेरा निज आदि-आदि । वह मोह-भ्रूहका प्रबल रक्षक है । मम-अमित सब स्थायीम अपना आरोप करना अहकार है । असे म ममनाम हूँ म अधिकारी हूँ आदि-आदि ।

आमा निरपाति है । उसके पीछे कोई उपाधि नहीं है । वह न निचीसे छाटा है और न फिटीसे बडा । उसम झोट-बडेका भर नहीं है । वह न फिटीका सेवक है और न निचीका स्वामी । उसम स्वामी-सेवकका येन नहीं है । छोटका बडा स्वामी-सेवक से छापी उपाधियाँ है । निचमी उपाधियाँ है व सब वचनसे-से निकलती है । ममितम-से कोई उपाधि नहीं निकलती । पूजताकी और बरहनाका कोई उपाधि नहीं चाहता । उपाधि चाहनाका हुमाता अपूजताकी और करता है । अहकार उसे

मोह-भ्रूहको तोड़कर आगे नहीं जाने देता । ममकार और अहकारसे राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं । जिनके प्रति व्यक्तिका ममकार होता है उनमें उसका राग उत्पन्न होता है । जिन अवस्थाओंके प्रति अहकारको मान्यता होती है उनमें भी राग होता है । ममकार और अहकारमें बाधा डालने-वालेके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है । इस प्रकार ममकार और अहकारसे राग और द्वेषकी सृष्टि होती है ।

राग और द्वेषसे कपायकी उत्पत्ति होती है । कपायके चार अंग हैं— क्रोध, मान, माया और लोभ । रागात्मक भावनासे माया और लोभ उत्पन्न होते हैं । द्वेषात्मक भावनासे क्रोध और अभिमान उत्पन्न होते हैं । इस कपायमें नोकपायकी सृष्टि होती है—भय, रोग, धृणा, विकार आदि उत्पन्न होते हैं । इन आन्तरिक प्रेरणाओंसे मन, वचन और शरीर प्रवृत्त होते हैं । प्रवृत्तिसे हिंसा आदि दोष उत्पन्न होते हैं । उनसे वन्धन होता है । वन्धनसे पुनर्जन्म होता है । शरीरकी रचना होती है । इन्द्रियाँ निष्पन्न होती हैं । इन्द्रियोंसे विषयोका ग्रहण होता है । उनमें राग और द्वेष होता है । राग-द्वेषसे वन्धन और वन्धनसे फिर जन्म—इस प्रकार यह ब्यूह चलता जाता है । इसका कभी अन्त नहीं होता ।

हम जबतक मान्यताओंके जगत्में रहते हैं मोहकी गाँठ नहीं खुलेगी । वह तब खुलेगी जब हम व्यवहारसे ऊपर उठकर निश्चयके जगत्में प्रवेश पायेंगे । वहाँ हमारा ज्ञान मिथ्या नहीं होगा । मिथ्याज्ञानसे मिथ्याज्ञानका आवरण नहीं फट सकता । किसी जमानेकी बात है—एक राजाने एक सन्यासीको निमन्त्रित किया । सन्यासी नगरमें घुमा तो उसने देखा—उसके मार्गमें बहुत बड़िया कालीन बिछाये गये हैं । वह अपने मार्गमें थोड़ा हटा और पामके गटेमें जा गिरा । साथके लौगोने हाथ पकड़ उसे बाहर निकाल लिया । उसके पैर कीचड़में सग गये । लोपोंके अनुरोध करकेपर भी उसने पैर नहीं धोये । वह कीचड़से सने पैरोंसे ही कालीनोंपर चलने लगा । राजाने यह देखा तो उससे रूहा नहीं गया । वह सन्यासीके

पास बाधा और बोधा महाराज । क्या कर रहे ह ? सच्चा ही बोधा
 राजाके महाराजके घर कर रहा हूँ । राजाके मुखकालके साथ कहा
 महाराज । क्या महाराजके महाराजके पूर किया जा सकता है ?

महाराजके महाराजके पूर नहीं किया जा सकता तो निष्पत्तानसे
 निष्पत्तानको कैसे हटाया जा सकता है ? मोह-बुद्धको टोकेका सबसे
 पहला उपाय है—सम्यग्ज्ञान । हमारा ज्ञान सम्यक् हो बचन सम्यक्
 हो या बलात् सम्यक् हो और चारणार्थ सम्यक् हो तभी हम समकार
 और महाराजकी सृष्टिको नियमित कर सकते ह । इसपर नियन्त्रण पा
 लेके बाद हम उन पदार्थोंको अपना नहीं मानेंगे जो आत्मासे भिन्न ह ।
 हम उन अवस्थाबामे महाराज आरोप नहीं करेंगे जो आत्माकी अपनी नहीं
 है । इतना हीनपर राज-व नभाव जादि कैसे मरजात करने उसे मुक्त
 बलका सिद्ध किम बिना फल नुम्हला जाते है । उनके मुक्ता बामसे मन
 अपन आप एकाग्र स्थिर वा निरुद्ध हो जाता है । इसीको हम ध्यान कहते
 है । ध्यान हठबोवसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है । बलकी प्राप्ति अत
 स्वतन्त्री सन्धिसे होती है । जैसे-जैसे ध्यान शक्तिवाकी बनता है जैसे जैसे
 मोह-बुद्ध छिन्न भिन्न होता जाता है । एक दिन ध्यान उस केन्द्र बिन्दुपर
 पहुँच जाता है कि उसको अनेक शक्तिये परास्त होकर मोहका बुद्ध पून
 रूपेण टट जाता है ।



आवेग और उप-आवेग

मानसिक आवेगों एवं उप-आवेगोंके अनेक प्रकार हैं। आवेग चार हैं—१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ। ये अपनी-अपनी मानाके अनुसार मानसको प्रभावित करते हैं। मात्रा भेदके अनुसार ये मूलप्रतया चार भागोंमें विभक्त होते हैं—१ अल्प, २ तीव्र, ३ तीव्रतर, ४ तीव्रतम।

तीव्रतम क्रोध आदि व्यक्तिके सम्यग् दृष्टिकोणमें विकार ला देते हैं। तीव्रतर क्रोध आदि आत्म-नियन्त्रणकी शक्तिको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। तीव्र क्रोध आदि आत्म-नियन्त्रणकी शक्तिके उच्चतम विकारमें बाधक होते हैं। अल्प क्रोध आदि व्यक्तिको पूर्ण भीतराग नहीं होने देते।

भय, शोक, घृणा, हास्य, रति, अरति, और काम-विकार—ये उप-आवेग हैं। ये भी व्यक्तिके जीवनको बहुत प्रभावित करते हैं। क्रोध आदिकी शक्ति तीव्र होती है, इसलिए वे आवेग हैं। वे व्यक्तिके शारीरिक और मानसिक स्थितिको प्रभावित करनेके अतिरिक्त उसके आन्तरिक गुणों—सम्यग् दृष्टिकोण और आत्म-नियन्त्रणको भी प्रभावित करते हैं। भय आदि उप-आवेग व्यक्तिके आन्तरिक गुणोंको उतना प्रत्यक्षत प्रभावित नहीं करते जितना शारीरिक और मानसिक स्थितिको करते हैं। उनकी शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है, इसलिए वे उप-आवेग हैं। आन्तरिक गुणोंमें होनेवाला प्रभाव बहुत सूक्ष्म होता है अतः वह सहजभावसे पहचाना नहीं जाता। आवेगों और उप-आवेगोंका शरीर और मनपर जो प्रभाव होता है, उसकी जानकारी हमें चिकित्सा-शास्त्रकी पुरानी और नयी

सनी शास्त्रावाके साहित्य-द्वारा प्राप्त होती है। योग-शास्त्रम भी इसकी चर्चा मिलती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मानसिक चिन्ता निराशा मय काम क्रोध लोभ मोह मय मात्सर्य आदि मानसिक बाधनासे हृदय रोम उत्पन्न होता है। मय चिन्ता क्रोध मय मोह मात्सर्य आदि मानसिक बाधनासे पुरुषका योग पतका हो जाता है और स्त्रीके रजोविकारका रोग उत्पन्न होता है। मानसिक चिन्ता अगाध अस्मिता और लोभने कारण मय रोग उत्पन्न होता है। ईर्ष्या और द्वेष बहुत और तिस्तीको प्रभावित करते हैं। क्रोध और भृषासे बुद्धि विकृत होते हैं तथा रक्त विषका वृद्धता है। चिन्ता और उदासीनतासे फेफड़े बुधक होते हैं, मस्तिष्क विकृत और रक्त दूषित होता है। विषय-वासनाकी प्रवृत्तियोंसे भीय विकार—प्रमेह आदि उत्पन्न होते हैं। ईर्ष्या मय क्रोध लोभ ईर्ष्य प्रहेय आदि मनोविकारोंकी वश्याम आने आगनासे अज्ञान समचित परिष्कार नहीं होता।

इसकी उत्पत्तिका कारण यह है कि म मानसिक बाधना शरीरकी रोग-व्यतिराजक-व्यतिरानो मष्ट कर सकते हैं। हृदये शरीरम यो पाचक रस रहते हैं—क अजानान - हाम्मून्-भौरिक अ देखीन।

द्वय ईर्ष्या मय शोक लोभ चिन्ता भृषा आदि मानसिक बाधनासे प्रभावित अजानान पाचक रस अल्प मात्राम बनते हैं। इसलिये शरीर और मय गन्धहीन हो जाते हैं।

चिन्ता शोक मय क्रोध लोभ आदि अजानान और अजीव रोग होता है—

वातादिभिः शोचमयासङ्गोम-श्लेष्मैश्चोष्णान्तरकण्ठैः ॥
अशाचनं चतु । (चरक चिन्तित्वा स्थान

— १ २५।१२४)

“मात्रवाप्यम्यवहृत पथ्य चास न जीयति ।

चिन्ताशोकमयक्रोध-दुःखशय्याप्रज्वामरै ॥”

(चरकगुडिस्थान—२)

चिन्ता आदिसे आमाशयिक स्राव कम होता है और क्षुधा नष्ट हो जाती है । हमारा जीवन प्रवृत्ति-बहुल है । जहाँ प्रवृत्ति होती है वहाँ वेग होता है । वह दो प्रकारका होता है—शारीरिक और मानसिक । शारीरिक वेग तेरह प्रकारके है—वात (ऊर्ध्ववात, अधोवात), मल, मूत्र, छोंक, प्यास, भूख, निद्रा, कास, अमजनितश्वास, जँभाई, अश्रु, वमन और शुक्र । इनका वेग धारण करनेसे रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिए उसका निषेध है ।^१

शारीरिक वेगोंको धारण करनेसे रोग उत्पन्न होते हैं और मानसिक वेगोंको धारण न करनेसे रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिए उनके निरोधका विधान है, कहा है—इस लोकमें और परलोकमें हित चाहनेवाला व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, राग आदि वेगोंका निरोध करे ।^२

एलोपीथीमें रोगके प्रधान हेतु कोटाणु है । होम्योपैथीका सिद्धान्त इससे सिद्ध है । इसके अनुसार उसका मूल मनसे भी आगे है । आयुर्वेदमें रोग चार प्रकारके माने गये हैं—१ आगन्तुक, २ शारीरिक, ३ मानसिक, ४ स्वामाविक ।^३

१ वेनाश्रु चारयेद् वात-विद्यमूत्रघ्नमदृष्टुषाम् ।

निद्राकासज्वर-श्वासबृग्माशुष्कद्विरेतसाम् ॥ अष्टांगहृदय सूत्र स्थान ४।१

२ चारयेत्तु सदा वेगान् हितेषी प्रेत्य चैव च ।

लोभेर्ष्याद्वेदमास्तयंरागादीनां जितेन्द्रियः ॥ अष्टांगहृदय सूत्र स्थान ४।२४

३. सुश्रुत सूत्रस्थान १।३२

ते चतुर्विधाः—आगन्तव शारीरा मानसा. स्वामाविकारयेति ।

आवेग और उप आवेग

आगन्तुक रोगों का हेतु बाह्य उपकरण—वास्तव में है। घाटीरिक्त रोग हीन मिथ्या और अविश्रान्त प्रयुक्त अज्ञान-पानके कारण कुपित (वाचिक) रूप प्राप्त निरुक्त एक एक या इनके मिश्रणसे उत्पन्न होते हैं। मानसिक रोग श्रेय लोक मन रूप विषाद ईर्ष्या असुखा ईर्ष्य, आत्मिक काम शोक आदिसे तथा हृत्ता और हृत्पक जनेक मज्जिते उत्पन्न होते हैं। स्वाभाविक रोग मूल श्वाश बुद्ध्या मूल्य मित्रा भावि है। रोगका एक हस्त कम भी भला जाता है। कमजोर रोग किसी बाह्य हस्तके बिना या प्रकट हो जाते हैं। कमजोर रोग हमारे लिए परीत है। स्वाभाविक रोग जीवनका सहज मम है। आगन्तुक रोगकी भी याख्या की जाती है वह आकस्मिक घटना है। गम रहत है—घाटीरिक्त और मानसिक। बाहरसे गरीरमें आकर रोग उत्पन्न करनेवाके अथवा या कौटा मज्जिते भी रोग उत्पन्न होते हैं वे भी आगन्तुक रोग माने जान चाहिये।

घाटीरिक्त मानसिक और आगन्तुक—इन तीनों प्रकारके रोगोंमें मुख्य रोग मानसिक है। वास्तवकी अपारमें कहा जा सकता है कि रोगके मुख्य हेतु आन्तरिक हीन श्रेय भावि है।

मनकी स्थिर स्थिति ध्यानावस्थान बाहरी प्रमाण बहुत कम होता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता शीघ्र होती है। मन बलवर्ती होता है तो वास्तविक और कल्पनी अतिरिक्त विषयता नहीं होती। मन पवित्र होता है तो श्रेय भावि अग्नि रोग उत्पन्न नहीं होता। मनकी अस्थिरता उच्छ्वस लता और अर्पणवस्थान तीनों प्रकारके रोग होते हैं। इसलिये आरोग्यकी पद्धतियोंमें स्वास्थ्य सहज अनेकित है। स्वास्थ्य यानी स्थिति-आत्म स्वभा। अर्पणवस्थे आत्मना उच्च होता है किन्तु धाम धाम लक्षणे घाटीरिक्त भी होता है।



उपासनाके बीज

आराध्यकी समाप्तिके लिए आराधना, साध्यकी सिद्धिके लिए साधनाका जो महत्त्व है, वही महत्त्व उपास्यकी उपलब्धिके लिए उपासनाका है। वस्तुतः इन तीनोंमें आर्थिक भेद नहीं है।

आराधनाका केन्द्र-बिन्दु आत्मा है। आत्मा चैतन्यको विविध परिणतियोंका है। चैतन्यकी मुख्य परिणतियाँ तीन हैं—बहिःचैतन्य, अन्तःचैतन्य और परम चैतन्य। जिसे देह और चैतन्यके दो स्वतन्त्र तत्त्व होनेमें भ्रम होता है, वह बहिरात्मा है। जो चैतन्यको देहसे भिन्न मानता है, वह अन्तरात्मा है। जो विणुद्ध बन गया है, वह परमात्मा है। यह हेय, उपाय और उपेयकी मीमांसा है।

अन्तरात्मा उपाय है। उसके दो कार्य हैं—बहिर्का त्याग और परमकी प्राप्ति करना। ममाधि-शतकमें कहा है—

बहिरन्त परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु ।

उपेयात्तत्र परम मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥

‘अध्यात्मोपनिषद्’ के अनुसार साधनाकालमें जो साधन होते हैं, वे ही सिद्धिकालमें स्वभाव बन जाते हैं।

ज्ञान, दर्शन और सत्त्व—ये आत्माके स्वभाव हैं। ज्ञान और दर्शन आत्माका है। इनके द्वारा ज्ञेय प्रकाशित होते हैं। सत्त्व आत्माकी स्वस्थता है। इसके द्वारा वह विजातीय तत्त्वसे अपने स्वरूपकी रक्षा करता है। प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है—शरीरको सारी विकृतियोंका मूल विजातीय तत्त्वका सग्रह है। जैन-दर्शनका अभिमत है—आत्माकी

घाटे विह्वलितवादा मूल पदपत्र जो आत्माका विवादीय तत्त्व है का स्रष्ट है ।

होम्यापनीय प्रवृत्त डॉ० हैनिमलना विवित्ता सुन है—आत्मक क्योरन का-क मयानसे समानकी चिकित्सा होती है । रोमकी सही विवित्ता यही है जो उस रोगको उत्पन्न कर सके ।

जन ज्ञानका आत्म चिकित्साका सुन है—समानस समानकी उप कर्मि हो सकती है । ज्ञानकी आराधनासे ज्ञानकी ज्ञानकी आराधनासे ज्ञानकी और नभरनी आराधनासे सबरनी उपरकी व होती है । आत्माके स्वभावना उपासनाके बिना उसकी उपरकी व नहीं हो सकती ।

आचार्यमय भवमान् महावीरन करा है स्प-रत ग-व रूप और ग-व—ये विवादीय तत्त्व है । इह जो ज्ञानका है और इनका परिस्थान करता है यही आत्मविद् है ।

जन-सून तीन प्रकारकी आराधनाका उपेक्षा वेत है—आचार्यना ज्ञानादायना और चारिनादायना । ज्ञानका ज्ञान वसकाल है नि व्यवहार बहिष्ठे जन आदि तत्त्वोका यज्ञस सम्यग ज्ञान इनका ज्ञान सम्यगज्ञान और उपस्थाना आचरण सम्यग चारिण है ।

असाक्षिब्रह्मण सम्भवन्व ज्ञानभावमस्तथात् ।

अज्ञान च तपसि यदा व्यवहारान् कृषिहस्तुतयम् ॥ (तत्त्वानु० ३)

निन्दु निरवयव बुद्धिज आत्माका निरवयव ही सम्यग-ज्ञान आत्माका बीज ही सम्यग ज्ञान और आत्मान स्थिति ही सम्यग चारिण है ।

इत्यत्र निरवयव बुद्धि चोच्यते चोच्यते इत्यतः ।

स्थितिरत्रैव चारिणमिति यावत् सिवात्तम् ॥

भवमान् महावीरन ब्रह्मा—आत्मीय ज्ञान ज्ञान और चारिणकी पाकर आत्मा पाप-कर्म (विवादीय तत्त्व) का नाश करता है । इस नाशना अर्थ है—उपास्य और उपासकके व्यवहारकी अभाविति । उपास्य और उपासक अविभक्त हो जायें यही है उपासनाका बीज ।

भुतकी उपासना

जो एकरी जान लेता है वह सबको जान लेता है और जो सबको जानता है वही अपना जानता है - यह आगम-वाणी है ।

यह क्या है जिसे जान लेगपर सब कुछ जान लिया जाता है ? आत्माका जान लेगपर सब कुछ जान लिया जाता है—यह उपनिषद् वाणी है ।

आत्मका क्या क्या है ? सबको पता और सबका क्या क्या जान लिया क्या जानना यही है ? कहीं-कहींकी मकड़ और कहीं-कहींकी समझ ? सबकी वास्तविकता क्या है और सब है उनके लक्ष्य बाह्यक । माध्यमकी मूल मानना मूल जैसे नहीं होगी ? हम सबकी उपासना करें इसका क्या है उनके माध्यमसे अब तक पहुँच जायें । आत्माका चिन्तन सबको ही यह वह क्या चिन्तन ? चिन्तन यह है, जिसके द्वारा हम आत्मा तक पहुँच जायें । अब तक पहुँचनेकी प्रक्रिया बहुत पुरानी है । 'ज्ञानकी मह कर अब तक पहुँचनेका यत्न किया सब उपासनाका यत्न हुआ । जिसकी उपासना की जिसके पास बड़े उसके पास पहुँच गये । यज्ञकी उपासना की तो यज्ञक बन गये । ज्ञानकी उपासना की तो ज्ञानी बन गये । गरुडकी उपासना की तो आचार्याणु बन गये । वीतराजकी उपासना की तो वीतराज बन गये । जिसकी उपासना की यही बन गये । आत्माकी उपासना की तो आत्मा बन गये और ब्रह्मकी उपासना की तो ब्रह्म बन गये । अष्टादशकी उपासना की तो अष्टादश बन गये और बुराईकी उपासना की तो बुरे बन गये ।

मनकी शक्ति अगाध है। वह जिसके पास बँडता है, उसीके पास आत्माको ले जाता है। मनके बँडनेको ही हमारे आचार्योंने योग कहा है। चित्तको समाधि या चित्तकी एकाग्रता या चित्तकी वृत्तियोंका निर्गम्य जो है, वही योग है और वही है उपामना। शब्दोंमें थोड़ा अन्तर है। एक जुड़नेका अर्थ देता है और दूसरा समीप बँडनेका। मन आत्मासे जुड़ जाये या उसके समीप बँड जाये—इसमें क्या अन्तर है। कुछ भी नहीं। अन्तर तो इतना ही है कि समीप बँडे बिना कोई जुड़ नहीं सकता। जुड़ता है, वह तो समीप रहता ही है।

आत्म-चिन्तनका मतलब है कि वह आत्माके बारेमें चिन्तन करते-करते आत्मा तक पहुँच जाये। हमारा चिन्तन तबतक चले, जबतक हम आत्मा तक न पहुँच जायें। व्यावहारिक पक्ष यह है कि हमारा चिन्तन तबतक चले, जबतक हम अपने-आपको दुःखी बनानेवाली अपनी ही चेष्टाओंको न पकड़ पायें। सहज ही प्रबन्ध होगा, क्या चिन्तनसे बुराई मिट जायेगी? उत्तर मिला—मिट जायेगी। इन दोनोंके बीचमें जो है, वह ता है। मनुष्य जो बुराई करता है, वह मूल बुराई नहीं है। वह बुराईकी अभिव्यक्ति मात्र है। बुराईका मूल है कि मन बुराईके समीप बैठा है। बुराई नहीं है। बुराईका सस्कार एकता है। बुराई नहीं मिटती, बुराईका सस्कार मिटता है। बुराईका सस्कार सूक्ष्म है। सूक्ष्मको मिटानेके लिए सूक्ष्म ही समर्थ हो है। चिन्तन मनकी क्रिया है। वह सूक्ष्म है। इसीलिए बुराईको मिटानेमें चिन्तन उसका महत्त्व है, उतना बाहरी कर्मोंका नहीं है। जैन-साहित्य कहता है—दो क्षणके ध्यानमें जो शुद्धि होती है, वह कई वर्षोंके नहीं होती। वेदान्तने कर्म-काण्डोंकी उपेक्षा की है और ज्ञानको ही मोक्षका परम साधन माना है। उसका भी एक दृष्टिकोण है। जहाँ मन जाता है, वहाँ बाणी जाती है और शरीर भी जाता है। जहाँ मन एकता है, वहाँ बाणी एकता है। हाथ-पैर रुक जाते हैं। मनकी तीव्र अनुभूतिके साथ ही, या चिन्तनके

भुतकी उपासना

जो एकको जान केडा है वह सबका जान केडा है और जो सबको जानता है वही एको जानता है — यह मान्य-भाणी है ।

वह क्या है जिसे जान केनपर सब कुछ जान किया जाता है ? आत्मानो जान केनपर सब कुछ जान किया जाता है—यह उपनिषद् वाली है ।

जानकका ज्ञान क्या है ? सबको पता और उनका ज्ञान जान किया क्या जानना यही है ? कहीं सबको पक्क और कहीं ज्ञानकी समझ ? ज्ञानकी वास्तविकता सदा है और सत्य है उनके सबके बाहक । मायामकी मूळ माला मूळ कैसे नहीं होनी ? इस सबकी उपासना करें इसका ज्ञान है उनके मायामके ज्ञान एक पहुँच जायें । आत्माका चिन्तन उपासना ही रहे वह कैसा चिन्तन ? चिन्तन वह है जिसके द्वारा हम आत्मा एक पहुँच जायें । ज्ञान एक पहुँचनेकी प्रक्रिया बहुत पुरानी है । सबको भेद कर ज्ञान एक पहुँचनेका मत किया सब उपासनाका ज्ञान हुआ । जिसकी उपासना की जिसके पास बडे उसके पास पहुँच गये । यज्ञकी उपासना की तो यज्ञका ज्ञान गये । शास्त्रकी उपासना की तो शास्त्री ज्ञान गये । चरित्रकी उपासना की तो आचारवान् ज्ञान गये । वीतराजकी उपासना की तो वीतराज ज्ञान गये । जिसकी उपासना की वही ज्ञान गये । आत्माकी उपासना की तो आत्मा ज्ञान गये और सबकी उपासना की तो सब ज्ञान गये । अच्छाईकी उपासना की तो अच्छे ज्ञान गये और बुराईकी उपासना की तो बुरे ज्ञान गये ।

मनकी शक्ति अगाध है। वह जिसके पास बैठता है, उसीके पास आत्माको ले जाता है। मनके बैठनेको ही हमारे आचार्योंने योग कहा है। चित्तको समाधि या चित्तकी एकाग्रता या चित्तकी वृत्तियोंका निरोध जो है, वही योग है और वही है उपासना। अन्दोमें थोड़ा अन्तर है। एक जुड़नेका अर्थ देता है और दूसरा समीप बैठनेका। मन आत्मासे जुड़ जाये या उसके ^ बैठ जाये—इसमें क्या अन्तर है। कुछ भी नहीं। अन्तर तो इतना ही है कि समीप बैठे बिना कोई जुड़ नहीं सकता। जुड़ता है, यह तो समीप रहता ही है।

आत्म-चिन्तनका मतलब है कि वह आत्माके बारेमें चिन्तन करते-करते आत्मा तक पहुँच जाये। हमारा चिन्तन तबतक चले, अबतक हम आत्मा तक न पहुँच जायें। व्यावहारिक पक्ष यह है कि हमारा चिन्तन तबतक चले, हम अपने-आपको दुःखी बनानेवाली अपनी ही चेष्टा-ओंको न पकड़ पायें। महज ही प्रश्न होगा, क्या चिन्तनमें बुराई मिट जायेगी? उत्तर मिला—मिट जायेगी। इन दोनोंके बीचमें जो है, वह समझता है। मनुष्य जो बुराई करता है, वह मूल बुराई नहीं है। वह बुराईकी अभिव्यक्ति मात्र है। बुराईका मूल है कि मन बुराईके मस्कारके समीप बैठा है। बुराई नहीं ^। बुराईका सस्कार रुकता है। बुराई नहीं मिटती, बुराईका सस्कार मिटता है। बुराईका सस्कार सूक्ष्म है। सूक्ष्मको मिटानेके लिए सूक्ष्म ही समर्थ हो है। चिन्तन मनको क्रिया है। यह सूक्ष्म है। इसीलिए बुराईकी मिटानेमें चिन्तन उसका महत्त्व है, इतना बाहरी चिन्तन नहीं है। जैन-साहित्य कहता है—दो सणके ध्यानमें जो शुद्धि होती है, वह कई उपवासोंसे नहीं होती। वेदान्तने कर्म-काण्डोंकी ^ की है और ज्ञानकी ही मोक्षका परम साधन माना है। उसका भी एक दृष्टिकोण है। जहाँ मन जाता है, वहाँ बाणी जाती है और शरीर भी जाता है। जहाँ मन है, वहाँ बाणी रुकती है। हाथ पर रुक जाते हैं। मनकी तीव्र अनुभूतिके साथ ही, या चिन्तनके

साथ ही हुमायूँ बचन और धीरे-धीरे चला हूँ। आत्माको जो पाना चाहि
 वह उसका चिन्तन करे मनकी तीव्रतम अनुभूति उसमें बोज दे। जो
 जिसके पास नहीं जाता वह उस वचन वा सूत्रों का ?

जो अपनी दुबलताकाको गिटाया चाहि वह उनके विच्छेदना चिन्तन
 करे मनकी तीव्रतम अनुभूति उसमें बोज दे। जो जिसके पास नहीं जाता
 वह उसको विच्छेद करे कर सकता है। या बन्धनकाको प्राप्त करना
 चाहि वह उनके विकारका चिन्तन कर मनकी तीव्रतम अनुभूति उसमें
 बोज दे। जो जिसके पास नहीं जाता वह उसका विनाश भी कैसे कर
 सकता है ?

सत्य चिन्तनको महात्मा बुद्धकी भाषा में स्मृति-उपस्थान कहा जा
 सकता है। जिस कायमें जो उद्योग मन कहा रहे उसकी अनुभूति होती
 रहे—वही है स्मृति उपस्थान। कोई एक काय होता है। पर योयोग
 उसमें नहीं होता उसे भवमान महावीर्य प्रथम किया कहा हूँ। उसमें
 वास्तविकता उभरी जाती है जब मन उससे पृथक् जाता है। कम होता रहे
 और मन कुछ ही बचकर उभरने लगे वही कमकी सामर्थ्य हीन ही
 पानी है।

अपिष्ट चाहता है म बुद्धिपूर्वक और बर्बादकी स्वीकार कर किन्तु
 कामकात्मक रहने ही एसा नहीं होता। बुद्धि चिर-अपिष्ट होती है
 अज्ञानसे तथा परिष्कृत किया जाता हूँ। अज्ञानकी वृत्तको स्वीकार करता
 है। अज्ञान मानने या स्वीकार करने-भाषते वह सब नहीं चाहे। मनकी
 तीव्रतम अनुभूति उसमें उसके साथ जुड़ी रहे, उभरी दे सकते हैं। इसीलिए
 अज्ञानके साथ-साथ आत्मोपासनाकी विधि स्वीकार की जाती है। आत्मी
 पासनाका पहला सूत्र है—अविधि आत्म चिन्तन कल्याण। अपिष्ट अपने
 आत्मको पश्यने शुरू नहीं करता। पर अपने-आपको उभरी यह सकता है
 जब आत्म चिन्तनकी प्रवृत्ति हो। अज्ञानको परिष्कृत बनानेके लिए यह
 निदान उपस्थित हूँ। आत्म विस्मृति हीनपर वह कैसे टिक सकते हैं ?

अभयकी मन्त्र

कोई मनुष्य नहीं चाहता—न भयभीत बनू। जो नहीं चाहता मैं भयभीत बन वह कैसे चाहेगा—न दूसरोंको भयभीत करू। जो दूसरा को भयभीत करवा वह अपने-आपमें अभय कैसे होगा? वह दूसरोंको इसलिए डराता है कि स्वयं डर रहा है। जो स्वयं अभय होता है वह दूसरोंको डरा नहीं पाता। जो दूसरोंको नहीं डराता वही अभय होता है। मन-आत्मके अनुसार महिसाबा आदि विन्दु भयम है। मानस-आत्मके अनुसार मनोविकासका भावि-विन्दु भयम है। भयवान् महात्माके प्रवचन का मूल मन्त्र है—डरो मत। जो डरता है उसीके आस-पास डर अपना डेर डाले रहता है। जो डरता है वह भयमको भेकेला अनुभव करता है अत्यन्त बलाहक है। भूत-सर्पोंके पीछे पड़ते हैं जो डरता है। डरा हुआ मनुष्य दूसरोंको भी डरा देता है। डरा हुआ मनुष्य तप और धर्मको भी शिखावकि दे देता है। डरा हुआ मनुष्य अपने वास्तविकी नहीं निभाता उसमें हुए भारको नीचले ही धार देता है। डरा हुआ मनुष्य उत्पत्तिका अनुभवन करनमें समर्थ नहीं होता। इसलिए डरो मत।

न भयावगो परिस्वितिसे डरो न भयावग वातावरणसे डरो। न कुलभेसे डरो। मित्रासे भी मत डरो। निरुद्धा जन्तु करन अभयसे भावित होता है वही व्यक्ति शक्तिकी सम्पत्तको पा सकता है।

भयसे स्थाय उत्थान विधिक ही जाता है। डरनेवाला मनुष्य अपनी शक्तिकी विकसित नहीं कर सकता। मनुष्य अत्यन्त कम पदाव और मोचके लिए बीठा है अत्यन्त वह डरता है। परिहारसे डरता है राज्य

सत्तासे डरता है, चोर-शुटेरोमे डरता है, गेब, वृद्धापे और मौतसे डरता है । अर्थ, पदार्थ और भोगके लिए जो नहीं जीता किन्तु अपने लक्ष्यकी पूर्तिके लिए जीता है, विक्रामके लिए जीता है, ब्रह्म और मोक्षया मोक्ष भी वहीं डरता । उसके लिए जीना अल्प-मूल्य होता है, लक्ष्यपूर्ति बहुमूल्य । बुद्धिमान् मनुष्य वह है जो अल्पके लिए बहुतको न लोये ।

आर्यो ! आओ ! भगवान्ने गौतम आदि श्रमणोंको आमन्त्रित किया । भगवान्ने पूछा—आयुष्मान् श्रमणो ! जीव किसने डरने है ?

गौतम आदि श्रमण निकट आये, वन्दना की, नमस्कार किया, धिनम्र भावसे बोले—भगवन् ! हम नहीं जानते, इम प्रश्नका क्या तात्पर्य है ? देवानुप्रियको कष्ट न हो तो भगवन् कहे । हम भगवान्के पानसे यह जानने-को उत्सुक हैं ।

भगवान् आर्यो ! जीव दुःखसे डरते है ।

गौतम भगवन् ! दुःखका कर्ता कौन है और उसका कारण क्या है ?

भगवान् गौतम ! दुःखका कर्ता जीव और उसका कारण प्रमाद है ।

गौतम भगवन् ! दुःखका अन्तकर्ता कौन है और उसका कारण क्या है ?

भगवान् गौतम ! दुःखका अन्तर्कर्ता जीव और उसका कारण अप्रमाद है ।

तुम अपने भाग्यके विधाता हो । सागरकी बूँद और सागर स्वयं तुम हो । तुम जो होना चाहते हो, उसका निर्णय तुम्हीको करता है । तुम इन पक्षियोंको गूँतगुनाते रहो—

मैंने सुना है, अनुभव किया है—

स्वतन्त्रता की कुञ्जी स्वयं मैं हूँ ।

मैंने मृता है, अनुभव किया है—

फूलों की सुगंध और काँटों की चुनन स्वयं न हूँ ।

मन सुना है अनुभव किया है—

प्रलय और सृजन स्वयं न हूँ ।

मन सुना है अनुभव किया है—

सागर की लूट और सागर स्वयं न हूँ ।



प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है—आकर्षणकी और विकर्षणकी । आवेगका विकर्षण होनेसे आन्तरिक आकर्षण समाप्त हो जाता है । कभी-कभी साधना-क्रमके अभावमें भी मनुष्य अपनी प्रबल विवेक शक्तिके द्वारा आकर्षणपर नियन्त्रण कर लेता है पर उसका विकर्षण नहीं कर पाता । बाह्यके प्रति आकर्षणका विकर्षण करनेके लिए ध्यानके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है । ध्यानसे मन केन्द्रित होता है और उससे स्वयं विषयोके प्रति अरुचि हो जाती है । ऋषिभाषितमें कहा है—ध्यानके बिना धर्म शिर-रहित शरीरके समान है । चित्तमें सहज वैराग्य हो जाये, यह बहुत कठिन है । दोषकालीन अम्यासके बिना सामान्य व्यक्ति वैराग्यको प्राप्त नहीं कर पाता ।

ध्यानके विषयमें जैन सूत्रोंमें अनेक स्थलोपर विस्तरे तत्त्व मिलते हैं । विशुद्धिभंग और पातजलयोगसूत्रकी तरह कोई एक आगमकालीन ग्रन्थ इस समय प्राप्त नहीं है फिर भी कई सूत्रोंमें तथा उत्तरवर्ती ग्रन्थोंमें ध्यानकी पद्धति मिलती है ।

ध्यानकी साधना-पद्धति यह है—भोजनका विवेक, आसनकी साधना, प्रतिमलीनता या प्रत्याहार, धारणा और फिर ध्यान । आचार्य कुन्दकुन्दने लिखा है—जो व्यक्ति आहार, आसन और निद्रा-विषयको नहीं जानता, वह जैन-शासनको नहीं जानता । साधनाका प्रारम्भ करनेवाला शैशव पहले दिन ही दृढ सयमी हो जाये यह कैसे सम्भव है ? सयमकी दृढता अम्यास करते-करते प्राप्त होती है । अम्यासके लिए अनुभवी गुरुका

माय-रक्षण आवश्यक है। जो माग ही न मान वह माने वैसे वह सकता है? माय पूजन क्या कोई संकोच होता है? नहीं होता। तो फिर साधकको माग-रक्षण कैसा क्या संकोच होना चाहिए? उसे यह मानकर कभी नहीं बचना चाहिए कि दूसरोको मरी दुबळ्याका पता न बने। इस मायतासे आपनो अपनो दुबळ्याको छिपानका प्रयत्न करता है और वहाँ छिपानेका प्रयत्न होता है वहाँ साधना बचनान बरक जाती है।

साधकको इस मायतासे आचारपर बचना चाहिए कि विषयोंके प्रति लगाव निरम नहीं है? सबमे है। दुबळता किसमे नहीं है? सबमे है। जो व्यक्ति साधनाके प्रारम्भ ही अपनेको बहुत प्रबल विज्ञानका यत्न करता है वह बहुत दुबल है। उसकी वृष्टि साधनके प्रति स्पष्ट नहीं है।

साधनके सामने आध्यात्मिक या मानसिक जो भी अवरोध बाने उसे वह अपने पद-बलके सामने रख दे। न अवरोधको दूर करनेका जो माय बचाने छुटपर बने। साधनाके समय मान कैसा बहुत बड़ी बात नहीं है बहुत बड़ी बात है करना।

जो व्यक्ति जीवनके प्रति बहुत चावकुक नहीं है साधनके सम्पादनमें कृशित नहीं है, अत्याहार चारना और ध्यानका सम्पादन नहीं है उसके लिए अज्ञानकी साधना कल्पनाकीकरी बात है।



विहार-चर्या

सम्बन्ध आहारके अतिरिक्त अन्य वस्तुओसे भी है। उनमें एक विहार-चर्या है। विहार-चर्या अर्थात् दैनिक चर्या। उसके अनेक अंग हैं। किन्तु आज मैं उसके दो अंगों — बैठने और श्वास लेनेपर कुछ बातें

बैठो तो विधिवत् बैठो। न झुककर बैठो और न अकड़कर बैठो। रीढ़को सीधा रखो पर तनाव मत लाओ। लम्बे समय तक एक आसनमें मत बैठो। उससे रोग पैदा होते हैं। योगकी विधेय साधनाके समय तीन घण्टे तक एक में बैठा जा सकता है। मयूरासन एक-दो मिनिट, मर्कट पाँच मिनिट और सर्वाङ्गसन तीस मिनिट तक किया जा सकता है। शरीरासनके लिए अलग-अलग विधान हैं। ध्यानासनमें पद्मासन आदि तीन घण्टे तक साधे जा सकते हैं। आसन जब सिद्ध हो जाते हैं सब सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्व नहीं आते। महर्षि पतञ्जलिने लिखा है—

ततो द्वन्द्वानभिघातः (पातञ्जल योग दर्शन २।४८)

शरीरमें दो प्रकारकी ग्रन्थियाँ होती हैं—अन्तःस्रावी, बहिःस्रावी। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ नल्लिकाविहीन होती हैं। वे बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। आसन और व्यायामसे उनकी शक्ति बढ़ती है। भगवान् महाश्वरंजने अनेक कष्ट सहें और कष्ट सहनकी धेड़ामें वे प्रसन्न भी रहें, विशेष साधनाके यह कैसे हो सकता है? शरीरासन करनेवाला सहिष्णु होता है। आसनमें न शारीरिक किन्तु मानसिक विकास भी होता है। शरीरके स्वास्थ्यके साथ महारा सम्बन्ध है।

रक्तके संचालनमें स्वासका बड़ा ह्रास है इसलिए इस बातपर ध्यान केन्द्रित करो कि स्वास कैसे किया जाये ? स्वास केनेका मुख्यभाग नाफ है । यह सहीसे जो गँहरे गंठ को । नहूँसे स्वास केनपर कम्बळ कमबोर बनता है क्योंकि नीतर जानवाकी ठन्डी हवा सीधी फेफड़ेपर बसर करती है । नाफसे जानवाकी हवा गरम होती है । उसमें जो कषय होता है उसे नाफसे केस रोक भेजे है । केसक सख हवा प्रवस करती है । किसी विशेष परिस्थितिमें स्वास मुहसे भी किया जा सकता है । मान जो गरमी बर बयी है । उसे शान्त करना है । उसका उपाय है शीतली मग्न । शीतली मग्न गरम समय स्वास मुहसे किया जा सकता है ।

हर समय स्वास कम्बी केनेका बज्जास करो । एरासरी आपन स्वास पीरे पीर कम्बा होता जाता है । गरम समय भी शीत स्वास किया जा सकता है । शीत स्वाससे स्वास्थ्यमें प्रत्यक्ष लाभ होता है ।

स्वस्थ कीम ? न स्वस्थ है या नहीं इसका निर्णय करना बहुत सरल नहीं है । कुछ कीम पुनकेनी बस्वस्थ और मोटको स्वस्थ मान कँठते है । डॉ० सुईकूलन कहा है—स्वस्थ यह है जिसका चित्त प्रसन्न मन शांत व प्रवृत्तियाँ उत्तमनारहित हूँ ।

स्वस्थ उच्चम मानसिक प्रसन्नताका बहुत बड़ा ह्रास है । हीन भावना और बहूँ भावना मनके सम्बुलकी निगाह देती है । किसीके कुछ कहनपर उपास्यक ईनपर मनके प्रतिकूल स्थिति होनपर मन विकस्यक भ्रम जाता है । इसमें कुछ कमी कहा ? इसक पीछ क्या मानना है ?—जादि जादि प्रसन्नोर्में मन सख जाता है । य जादिक विकस्य सहीके मानसमें उठते है जिसका मन कमबोर होता है । जिसका मन सन्तुष्टाकी हाता है वह सब कुछ समझता हुआ भी बाह्य स्थितिमें बनिष्ठ प्रभावित नहीं हाता । मानसिक संवेकनाबोका स्वास्थ्यपर बहुत बसर पडता है । शरीरमें भयपर रोगके नीठानु होते है पर शीतली बनिष्ठ प्रवक होनसे उमरा

जोर नहीं चलता। मन कमजोर हो जाये तब वे फीटाणु भी आक्रमण कर देते हैं।

डॉ० हैनिमेनने कहा—रोगका मूल आत्मामें है। इसमें सच्चाई भी है। कुछ आगन्तुक रोगोकी बात छोड़ दे तो निष्कर्ष प्राप्त होगा कि मनुष्यके शरीरमें उस प्रतिघत रोग शारीरिक होते हैं और नब्बे प्रतिघत मानसिक। मानसिक आवेगोसे अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। घृणामें मन विपादसे भर जाता है। एक व्यक्तिका सामान्य स्थितिमें फोटो लिये गये उस समय वह था, रक्त आदिमें कोई दोष नहीं मिला। उसी व्यक्तिके घृणाके समय फोटो लिये गये तो रक्तमें दूषितता मिली। आवेगोसे मन विपण्न होता है और मैत्री आदि भावनाओंसे वह प्रसन्न होता है। प्रसन्नताका स्थान हर्षसे बहुत ऊँचा है। हर्ष परिस्थितिजनित मानसिक अवस्था है। वह अनुकूल सयोगोमें उत्पन्न होता है और प्रतिकूल सयोगोमें विनष्ट हो जाता है। प्रसन्नता अन्तःकरणकी सहज स्वच्छता है। वह बाहरी सयोग-वियोगसे अप्रभावित मनकी स्थिति है। ध्यान, कायोत्सर्ग, अनित्य आदि भावनाओंके द्वारा चित्तमें प्रसन्नता बढ़ती है। चित्त जितना प्रसन्न होता है, वह उतना ही स्वस्थ होता है। जितना विपण्न होता है उतना ही अस्वस्थ। प्रसन्नताके लिए ध्यान और कायोत्सर्ग अमोघ साधन हैं।

मानसिक प्रफुल्लतासे शरीरका संरक्षण होता है। आजकल डॉक्टर लोग स्वतः सूचनाका अधिक उपयोग करते हैं। मनमें सबस्य करें कि मैं स्वस्थ हूँ। मेरी बीमारी मिट गयी है। विश्वासके साथ सकल्प करनेसे निश्चित मिलती है। धारणा, स्वतः सूचना और आसनोंका प्रयोग करके देखा जाये फिर यह प्रश्न नहीं होगा कि इनका स्वास्थ्यसे क्या और कितना सम्बन्ध है ?



स्वास्थ्य और आहार विवेक

स्वास्थ्यके अनेक सामन ह रोग भीवन भी एक ह । जीवन सम्बन्धी बानकारी आवश्यक होती है । जीवन कब बरमा चाहिए ?—इसका सीमा-सा उत्तर नहीं है बस भूख कम जाये ? कितना और क्या खाना चाहिए यह भी जानना आवश्यक है ।

जानमम एक शब्द जाता है मियासक—मिताहार । सामुको मित आहार करता चाहिए । आनुवंशिक भी आहारके तीन प्रकार बताये दये है । हीमाहार मिताहार और अतिमाहार । मिताहार स्वास्थ्यके अनुकूल होता है । हीमाहार और अतिमाहार स्वास्थ्यके प्रतिकूल होते है । यद्यपि कहयो का पिलाउ है कि हीमाहारसे पावन-क्रिया ठीक होती है पर आनुवंशिकी दृष्टिसे यह सही नहीं ह । यैसा कि कहा गया है—

हम हीमाहाराहारपरिषि ब्रह्मर्षिचमसकमकरमुखावतकरमामुखनृष्य
करीबाले बरीरमनोमुद्धीप्रवीपवाकर घारविममकसम्बावहमसीरीर
बारादि ।

हीन आहारसे बस शीतल और पुष्टता गष्ट होती है । आसुख और जोबरी हानि होती है । शरीर मन बुद्धि और अग्रिमका निगाह होता है तथा अस्वी प्रकारके मायुके रोय उठ खडे होते है ।

आहारमलि पथति शीबालाहारवशिता ।

आहार कीन्हे दोरैहु बीवित अतुसकये ॥१॥

बलि आहारको बचाती है । आहारके बनावने यह धोषोकी पचाती है । रोय शीत हीनपर यह मायुकी और मायुभाके जीव हीनपर यह जीवन

को लील जाती है। इसलिए आयुर्वेदका मत है कि अग्निको उचित मात्रामें आहार मिलना चाहिए। अतिआहार सब दोषोंको कृपित कर देता है—
अतिमात्रं पुनः सर्वदोषप्रकोपनम्।

प्रश्न उठता है, परिमित आहार किसे माना जाये? सबकी भूख समान नहीं होती इसलिए सबके लिए एक ही सीमा नहीं हो सकती। इसका मसिप्य उत्तर यही होगा कि जिसको जितनी भूख लगे उसमें एक-दो कबल कम खाना ही परिमित आहार है। भारतीय स्वास्थ्य-विभागने सामान्यतः भोजनकी टालिका इस प्रकार प्रस्तुत की है—अनाज १४ औंस, दलहन ३ औंस, साग-तरकारी ६ औंस, दूध १० औंस, चीनी या गुड १ औंस, तेल, घी आदि २ औंस।

शारीरिक श्रम करनेवाले इस अनुपातसे अधिक भी ले सकते हैं। क्योंकि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भोजन करनेके दो कारण हैं—शक्तिकी पूर्ति और शक्तिकी प्राप्ति। ज्यादा खानेसे ज्यादा आती है, यह विश्वास मिथ्या है। होता यह है कि अधिक खानेके लिए लक्षण आम्ल थावि अधिक लक्ष्य होते हैं। हित्वाहारसे स्वास्थ्य बनता है और अहित्वाहारसे वह विगडता है।

हिताहारोपयोग एव पुरुषवृद्धिकरो भवति।

अहित्वाहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्तमिति ॥१॥

जो आहार हम शरीर-वातुओंको प्रकृतिमें स्थापित करता है और विषम शरीर-वातुओंको सम करता है, वह हित्वाहार होता है, जो इससे विपरीत होता है वह अहित्वाहार।

“अदाहारजातमपार्श्वं शरीरवातुन् प्रकृती स्थापितं विषमाम्बु ममीकरोतीत्येतद्विदितं विधिं, विपरीतं त्वहितमिति।”

भोजन कैसा? : आयुर्वेदमें इसका उत्तर यह है कि मनुष्यका भोजन स्निग्ध, लघु और रमपरिपूर्ण हो। कोरे लक्ष्णे आहारमें वृत्तियोंमें भी स्थापन आ जाता है और सागमें चिकनाई—स्निग्धतासे अनुदीर्घ अग्नि

प्रधीप्त होती है छाया हुआ जीवन धीम्र पचता है बायका अनुभवीयन होता है हरिमां नष्ट होती है बल बढता है बल और प्रसन्नताकी बनिवृद्धि होती है। इसकिए भोजन स्निग्ध होना चाहिए।

स्निग्धमलीयात् स्निग्ध हि मुष्णमान स्वदते मुक्त चानुशीय मन्निमदीरमति सिप्र बरा मच्छति वातमनुभोमयति वृद्धीकपेती भ्रियानि ब्रह्मानिवृद्धिमुपनयति ब्रह्मप्रसाद चाग्निनिवतमति। तस्मात् स्निग्धमलीयात्।

उष्णमलीयात् उष्ण हि मुष्णमान स्वदते मुक्त चानुशीय मुनीरमति सिप्र बरा मच्छति वातमनुभोमयति। श्लेष्मान् च परि ह्लासयति। तस्मात् उष्णमलीयात्।

आहार कैसे करें ? स्वास्थ्यविद्याल भोजन करनेकी कुछ विधिमां निरूपित की है। व बहुत उपयोगी है। समय पक्षकी विधि यह है—

१ उभगा मवीर - आहार करते समय मन आहारम ही रहना चाहिए।

२ नासिदुतमलीयात् - बहुत बरपी-भारी नहीं खाना चाहिए।

मात्—बहुत धीरे-धीरे गहो खाना चाहिए।

मज्जन्तु बहुसन् उभगा मुवीर—भोजन करते समय न बातचीत करनी चाहिए और न हसना चाहिए। मन केवल भोजनम रहना चाहिए।

३ ईर्ष्यामयाभोमपरिहृतेन सुखेन कर्तव्यनिपीडितम्।

बहुबभुलेव च संज्वमानमन्त्र न सम्बन्ध परिपाकमति ॥१॥

साधवाप्यम्यबहुत पन्ध चान्ध न शीयति।

चिन्ताशोकमदकोरहु-पक्षध्याप्रकारि ॥२॥ भोजन करते समय

मन शांत रहना चाहिए। क्वीनि ईर्ष्या भय क्रोध शोक रोद शोकता प्रदोष चिन्ता शोक दुःखान्या और रधि-दावरथ—इन सब स्वाधोषी प्रभावित व्यक्ति भी जाता है उसका ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता। यह धरि पन्ध आहार करता है और मुक्त मानाव करता ह फिर भी उसका खाना हुआ ठीक ठमरी नहीं पचता।

पानी : भोजनके माय पानीका भी सम्बन्ध है । उममे भोजन पचता है और शरीरके दूषित तत्त्व बाहर निकलते हैं किन्तु उमका उपयोग भी विवेकमापेक्ष है । एक नाव बहुत पानी पीनेमे भोजनका परिपाक नहीं होता और पानी बिलकुल न पीनेमे भी उमका परिपाक नहीं होता, इम-लिए थोडा-थोडा कर अनेक बार पानी पीना चाहिए ।

अत्यम्बुपानाच्च विपश्यतेऽन्नं, निरम्बुपानाच्च स पाकमेति ।

तस्मात्सरो वद्विविबर्धनाय, सुदुसुदुर्वारि पिवेशभूरि ॥

पानी न अधिक गरम और न अधिक ठण्डा बल्कि शरीरके तापमानके समान पीना चाहिए ।

उममर्ग विवेक . स्वास्थ्यकी सुरक्षाके लिए जितना महत्त्व भोजनका है, उमसे कम उत्सर्गका नहीं है । शरीरमे जिनमे दोष मचित होते हैं उनका प्रधान कारण समयपर ठीक उत्सर्ग न होना ही है ।

उत्सर्ग यदि ठीक समयपर हो तो शरीर अस्वस्थ बहुत कम बनता है । आसन, व्यायाम आदिका महत्त्व इसीलिए है कि वह आँतोको बल देता है । जिससे वे समयपर अपना कार्य करती रहें । आँते यदि स्तन्दन और विमर्जनका कार्य उचित ढंगसे करती रहें तो अस्वास्थ्यकी सम्भावना बहुत क्षीण हो जाती है । जिसके आँतोकी विसर्जन-शक्ति ठीक है, जो उचित मात्रामें जलका सेवन करता है और जो हितपरिमित भोजन करता है, उमके स्वास्थ्यकी सुरक्षा उसकी इन प्रवृत्तियोमे ही निहित है ।



चित्तशुद्धिके साधन

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तुपक्षधरम्—। (चित्तचूडामणि)

कर्म चित्तकी शुद्धिके लिए करना चाहिए वस्तुकी उपलब्धिके लिए नहीं—यह धरणावाक्या अधिमत्त है । उन्होने चित्त-शुद्धिके परम्परागत चार साधन माने हैं—

साधनात्मन चत्वारि कर्तव्यानि शरीरिणिः ।

वेदुः सत्त्वेषु सन्निह्य चतुर्भावे च सिद्धयति ॥ १८ ॥

आदौ नित्यानित्यवस्तुविभेद परिगम्यते ।

इहाहुव चरिणीगविरागस्तद्वचरम् ॥ १९ ॥

समादिपट-उपसन्दधिसुशुद्धत्वमिति सुखम् ॥ २० ॥

१ निवेक २ मोक्ष विराग ३ समादि पटक सम्पत्ति ४ सुशुद्धत्व ।

पैन साधनाये इनके नाम भिन्न हैं पर धारणी श्रुतिसे बीबीमें समागता है—

१ निवेक = सम्मत्त्व

२ मोक्ष विराग = निर्वेद

३ समादि पटक सम्पत्ति—

(१) धम (२) धम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) यज्ञा (६) समाधि = (१) धम (२) धम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) यज्ञा, (६) समाधि ।

४ सुशुद्धत्व = स्वयं

आचार्य शंकरने विवेककी परिभाषा इन शब्दोंमें की है—ब्रह्म सत्यं
 है, जगत् मिथ्या है । इस प्रकार जो विनिश्चय है, उसे नित्यानित्य वस्तुना
 विवेक कहा जाता है—

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्येत्येव रूपो विनिश्चय ॥२०॥

सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः ॥२१॥

जैन-दर्शनके अनुसार जिनका अस्तित्व है वे सब सत्य हैं । चेतन भी
 सत्य है और अचेतन भी सत्य है । अस्तित्वकी दृष्टिमें दोनों सत्य हैं ।
 चेतन और अचेतनमें एकताकी वृद्धि होती है, वह असत्य है । चेतनको
 अचेतनसे भिन्न मानना त्व है । भोग वस्तुके प्रति जो घृणा होती है,
 उसे वैराग्य कहा जाता है—

तद् वैराग्यं श्रुगुप्ता या दर्शनध्रुवणादिभिः—॥२१॥

देहादिब्रह्मपर्यन्ते टानित्ये भोगवस्तुनि—॥२२॥

वस्तुके प्रति हमारी दोष-दृष्टि स्थिर हो तो मनमें घृणा होती है,
 अन्यथा नहीं ।

कोई चीज सामने आती है । वह रग-रूपमें अच्छी है । शरीरके
 लिए वह हितकर नहीं है फिर भी उसे देख व्यक्तिका मन ललचा जाता
 है । क्योंकि आँखोंके सामने उसका रग-रूप आता है, पर परिणाम नहीं

। इन्द्रियोंके सहारे चलनेवाला परिणामको नहीं जानता, वस्तुके
 रूपको जानता है । जो व्यक्ति यह जान ले इसका परिणाम अच्छा नहीं
 है, वही उसके उपभोगसे बच सकता है । भगवान् महावीरने कहा है—
 आयकदसी न करेइ पाव—जो आतकदर्शी होता है, वह पाप नहीं
 करता । पाप वही करता है जिसे पाप करनेमें आतक-दर्शन नहीं होता—
 अपना अनिष्ट नहीं देखता । जो व्यक्ति यह जानता है कि मनमें एक
 बार बुरी भावना आनेका अर्थ है दिमागमें शैतानको पालना । वह बुरी

भाषणागे विभागम बुद्धमसे रोकेधा । निन्दु भी ऐसा नहीं जानता वह
 बूढ़ाकी बर्दाई करनम बहुत रउ केता है । एक बार जी विभागम बुद्ध
 भाषना जाती है वह अपना उत्कार छोड जाती है और वह उत्कार न
 जाने कम उन्मुक्त होकर व्यक्तिकी मटका देता ह । बहुत बार हम कल्पना
 करत है कि अमुक व्यक्ति इतना अच्छा ह उसने वह अनुचित काम कैसे
 दिया ? पर हम इस सत्यको नुमा देत है कि व्यक्ति बतमानसे ही प्रेरित
 नहीं होता अतीतके उत्कारके भी प्रेरित होता है । इसी सत्यके सम्बन्धमें
 बबबान् महामौरन कहा बा—दिया इसकिए त्याज्य है कि उससे अपना
 पचन होता है ।

अपनी अहर्षिते अल्पे अनुभूतिके स्वरमें लिखा है—मैं किसीका
 विरहकार नहीं करना क्योंकि वह मुझे विरहयुक्त होकर मेरे अहितके
 लिए सग्न जानकर नन जानेवा—

मो ह सङ्ग मो अप्यथी विमोचजडुताय पर अभिभविस्तमि ।

मा न मा प्य से परे अभिभूचभाये मम येन अहिताय नविस्तपि ॥१॥

अमन वाचनिक कोष्ठमें कहा—किया हुआ कम अवश्य जीवन पत्रता
 है । यह सिद्धान्त वैदिकवाका आधार प्रस्तुत करता है । भारतके अनेक
 वाचनिक इस सभ्यको ह्वाये कर्षोसे बोहदाते जाये है । हम बहुत कल्पे
 अविषयम न भी जाये । इसकी सबाई उससे पून भी हमार जानने आ
 जाती है । क्या मूठ बोलनेवाका उसके परिणामसे मथ सकता है ? कभी
 नहीं । मूठ बोलनेसे पहले मगम पिटा होती है । बोलते समय मय
 होता है हृदयम पडकर नड जाती है और अन्तम पश्चात्तापसे मन भर
 जाता ह । इस प्रकार हीना ही काकाम मूठसे मालसिक प्रविधानं विधि
 क्या जाती है ।

अध्यात्मके प्रति भी अनेका होती है वह मयम हितके लिए होती है ।
 बुद्धके हीम माननसे वह हीम नहीं होता किन्तु हीम माननवाक्य हीमता
 अत्यन्त ही जाती है । बुद्धके प्रति मनुष्य व्याहार करनेवाका उसके प्रति

संवेग

वेग एक विषय वास्तुमें बना है। मित्रता अथ है घोटना कम्पन करना। वेग भी प्रकारका होता है—धारीरिक और मानसिक। मूख व्याध, रोगा हसना मख भूष नीय धारि धारीरिक षग है। कोष अविमान कपट कोष कामवासना धारि मानसिक वेग है। धारीरिक षगको रोमनसे हानि होती है और मानसिक वेगको न रोमनेसे हानि होती है। आनुर्विककी मुद्रिसे भी धारीरिक षग रोमना कामप्रव नहीं है। दृष्टवैकालिक धूनमें कहा है—

मख-मूषके षगकी मख रोको लसे रोमनेसे अथक रोम उत्पन्न हो जाती है।

सुखविरोहि अथक, अथकविरोहि अ धानिध अथक।

उद्विरोहि नीय, सुखविरोहि अथक अथक ॥

मूषका षग रोमनेसे अथकी अथि मख होती है। मखका वेग रोमनेसे नीयकी अथिका मख होता है। अथकानु रोमनेसे मूख रोम उत्पन्न होता है और नीयका वेग रोमनेसे मूषकत्वकी हानि होती है।

वेगका अर्थ है—अथि ना धीय अथि। अ अथक अथकसे अथका अथ होता है—नीयके अथि धीय अथिकाया। मूषकू धानु ही नहीं मूषकू नी ही अथते है अथि मूषकूके भाव अथक हो। धानुकी एक दिन एकेअ मूषकू अथक अथे। धारणाअने अथकी वेगधूया अथक अथे नहीं धिना। सुखकककर अथक कर धिना। एअक अथकने अथ अथककी स्थितिधो अथ धिना। अ धीककर नीय अथे गानुकीधे मथी मथिने अथे। अथक मथ नीयक कहा—अथ अथक अथका अथक है धी ही अथते

मुक्त होना चाहता है ।

ये विचार वही उठते हैं जहाँ समताका भाव आता है । मनके अनुकूल कार्यों में गर्वकी अनुभूति होती है और प्रीति स्थितिमें हीन-भावना सताती है । यह वृत्ति मनुष्यको बार-बार दुःखी बनाती है । निन्दा और प्रशंसामें सम रहना अति कठिन है । किन्तु मुमुक्षुको उनमें सम रहना चाहिए ।

लामाछामे सुहे , जीविए मरणे तहा ।

समो निदापसंसासु, तहा साणावमाणसो ॥

लाम और अलाम, सुख और दुःख, जीवन और मरण, प्रशंसा और निन्दा, मान तथा अपमान—ये पाँच युगल हैं । हर व्यक्तिमें मानवीय दुर्बलता होती है । इसीलिए वह पाँच युगलोंमेंसे लाम, सुख, जीवन, प्रशंसा और मानको चाहता है । अलाम, दुःख, मरण, निन्दा और अपमानको नहीं चाहता । वैसे जिन पाँचोंको व्यक्ति चाहता है वे भी ध्वंसन हैं और उनसे बचिके गहरें हैं, जिनको वह नहीं चाहता । क्योंकि द्वेष और निन्दाकी घात समक्षमें आ जाती है पर राग और प्रीतिकी घात से नहीं आती । जब यह आ जायेगा कि ये भी ध्वंसन हैं तभी साधना होगी । साधु बनने-मात्रसे जीवन ऊपर उठ जायेगा, यह मानना भूल है । जीवन उत्तम तभी होगा जब इनकी साधना फलवती होगी । गृहस्थकी सामायिक मुहूर्त-भर तक होती है साधु उसे जीवन-भरके लिए स्वीकार करता है ।

सामायिकका अर्थ है—जिसे सर्वथा परिहार । लाम और अलाम दोनों जीवनकी विषमताएँ हैं । लाम पहाड़ है तो अलाम गड्ढा । लाम है यिक या अलाम है । पाँचों युगल जीवनकी विषमताएँ हैं । उनका त्याग ही सामायिक है । साधकमें सबसे पहले मुमुक्षा वृत्ति होनी चाहिए । उसके सुप्त होनेपर सब सुप्त हो जाते हैं । मुमुक्षा वृत्तिकी परिणाम है—(वर्मके प्रति श्रद्धा या इच्छा उत्पन्न होना) विना

प्रयोगन इच्छा-आगति नहीं होती। सम्बन्धे मुक्त होनेकी इच्छाके लिए पक्षी साधन बन है। इसीलिए बमके प्रति भ्रष्टा होती है फिर उसका आचरण। एक व्यक्ति शोकसे बल उठता है पुनरा समा करता है। समा करनेवाला जानकी अनुभूति करता है। इस वह निश्चय करता है कि समाका भाग सुखर है।

सम्बन्धे अनुत्तर बमके प्रति भ्रष्टा होती है और उससे अधिक समेप बढ़ता है। बमके प्रति भ्रष्टा है भा नहीं इसका धीरे उत्तर आत्म निरीक्षण से मिलता है। जिसके मलय भ्रष्टा होती है वह सुख व्यवहार नहीं करता। जहाँ उसके प्रति भ्रष्टाका अभाव होता है वहाँ स्व सुख होता है जो नहीं होना चाहिए।

बमकी वैज्ञानिकता

बम वैज्ञानिक उत्पन्न है। वैज्ञानिक उत्पन्न वह होता है जो वैज्ञानिकोंके अन्वेषण हो जिसका निष्कर्ष सब वैज्ञानिक समान हो। अमेरिकाम प्रयोग करनेके सफलता मिलती है जो भारतम भी उसका प्रयोग सफल होता। एक बम पहले प्रयोगन सफलता मिली थी जाप भी उसम सफलता मिलेनी। सबसे और सफल भी प्रयोगन एकदमम रहता है वह वैज्ञानिक उत्पन्न होता है। बम इसकी कमीटीम परम वैज्ञानिक उत्पन्न है। बम आचरणम अन्वेषण भारतम या अमेरिकाम कहीपर भी करो उसकी आचरण मिलेगा। जाप बल और परतो बनी उसकी आचरणम करो उसके परिणाममें कोई अन्तर नहीं आवेगा। बमकी आचरणम करनेवाले सब मुक्त हो गये अन्वेषणमें हो रहे हैं और अन्वेषणमें होने। इसीलिए बम प्रायोगिक है अन्वेषण है और वैज्ञानिक अन्वेषण है। इसीलिए वह परम वैज्ञानिक उत्पन्न है।

प्रायोगिक वैज्ञानिक नये वैज्ञानिक वह मानन को है कि अन्वेषणके बिना वैज्ञानिक नहीं मिलती। वैज्ञानिकोंमें वह अन्वेषण है कि क्या सामु सामु

मे रमण करता हुआ क्रमशः सुखोमे आगे बढ़ता है। एक वर्षकी साधनामे वह भौतिक जगत्मे उत्कृष्ट पौद्गलिक (सर्वार्थसिद्ध) सुखोको लांघ जाता है। पाँच, दश और पन्द्रह वर्षों तक साधुत्व पालनेपर भी यदि आनन्द नहीं आता तब प्रश्न उठता है कि यह सिद्धान्त सही नहीं है या वह हमारी पकड़में नहीं आया। पहली बात पकड़की है। वह सही है या नहीं ? इसका निर्णय पकड़के बाद ही हो सकता है। उसे पकड़नेमे ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। देवताओका स्तर जैसे-जैसे ऊपर उठता है वैसे-वैसे उनका परिग्रह, ममत्व और शरीरकी अवगाहना कम होती जाती है, शान्ति बढ़ती जाती है। निवृत्तिके साथ सुख भी बढ़ता जाता है। हमे यथार्थ दृष्टिसे देखना चाहिए। उसके बिना हम सत्य तक नहीं पहुँच सकते। यथार्थ-दृष्टिसे देखनेपर यह स्पष्ट होता है कि भौतिक सुख भी क्षणिक सुख है पर उसे दुःख इसलिए माना कि उसका परिणाम सुखद नहीं है। एक सुख ऐसा भी है जिसका परिणाम सुखद है। ती प्राप्तिके लिए ही क्षणिक सुखका त्याग किया जाता है। सुख केवल शारीरिक हो नहीं मानसिक भी होता है। सबसे बड़ा सुख मनकी शान्ति है। मनुष्य बाद-विवादसे थकनेपर शान्तिकी शरणमे जाता है। सबसे बड़ा दुःख अशान्ति है। उसका मूल आवेग है। उसपर विजय पाना ही सवेगका मार्ग है।

निर्वेद

मनसाकी प्रति जगत्के वाद निर्वेद होता है। निर्वेदका अर्थ है—
 वैराग्य। यह तीन प्रकारका है—संसार-वैराग्य, शरीर-वैराग्य और मोक्ष
 वैराग्य। परन्तुजिने वैराग्यकी परिभाषा की है—

छानुत्तमिकविदपवितुष्यत्वं यतीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥

उत्तर पुराणवाक्यैस्तुजयैतुष्यत्वं ॥ पाठान्तक शेषे अक्षय ॥ १५, १६

मुक्त (विषय) को प्रकारके है—बुद्ध और आनुभविक। जीवन
 मृत्यु अज्ञान आदि को प्रत्यक्ष है वे सब बुद्ध हैं। जो इन्द्रिय विषय पककर
 या सुनकर जाने जाते हैं वे आनुभविक हैं जैसे स्वप्न-मुख आदि। येजो
 ही प्रकारके विषयोंके प्रति सुखाने जान समान्य होनेपर वैराग्य होता है।
 यह पार्थिकके लिए ही नहीं सबके लिए आवश्यक है। उक्त अज्ञानुक्त
 मुक्तके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है अन्वया आत्मरसन नहीं होता।
 आशाम मुक्तमुक्तके कहा—

जान न अज्ञान् अन्वया विद्वान् नरो पबहृद् ज्ञान।

विद्वद् विरचचितो ज्ञेई ज्ञावैद् अन्वयम् ॥

अनुभव अत्यन्त विषयको ज्ञानता है अत्यन्त आत्माको नहीं जान
 पाया। विषयके विरक्त होनेपर ही यह आत्माको जान समता है।
 विषयोंके दूर होनेके लिए एक एका अभ्यस जगत्के रहना आवश्यक है
 जिसकी पूर्ति विषय—सुखोंके अधिक आनन्द मिले। अन्वय आदि
 बाह्य ज्ञान और ज्ञानी आदि चार भावनाओंका अन्वय भी विषय
 विरक्तिवा एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। विरक्त को ज्ञान् चक पछा है अत्यन्त
 बुद्धी और मोक्षके लिए आत्मजाका चार चार अन्वय करना आवश्यक

है। समुद्रकी तरह आत्माको भी दो अवस्थाएँ होती हैं—प्रशान्त और तरंगित।

रथाद्वेषादिक्रवलोत्तरलोचं यन्मनोजलम् ।

स पश्यत्वात्मनस्तत्त्वं तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥

राग और द्वेषसे जिसका मन तरंगित नहीं है वही आत्म-तत्त्वको पाता है। आत्माके प्रति दृढ़ आस्था पैदा हुए बिना आनन्द नहीं है। उसको उपलब्धिके लिए त्यागकी भावना होनेपर सर्व उपलब्धि हो जाती है। सर्व प्राप्य है पर अब्यात्म अप्राप्य है। साधु-जीवनके प्रति आइसलिए है कि अन्यत्र जो अप्राप्य है वह इसमें प्राप्य है। आत्माकी तरंगित दशा विकल्पसे होती है। वह शारीरिक और मानसिक दोषोंसे उत्पन्न होता है। मूल लगती है ध्यान टूट जाता है। व्यास लगती है एकाग्रता भंग हो जाती है। क्रोध आता है, चित्त चंचल हो उठता है। इस अवस्थामें जो प्राप्य है, वह दुनियाके किसी भी व्यक्तिको प्राप्य है। विषयका वैराग्य और आवेगोपर विश्रय पाना हर किसीको प्राप्य नहीं है।

प्रश्न ही है—देह है तो इन्द्रिय विषयोकी चकता रहेगी। वृत्ति भी रहेगी। वह रहेगी, उसे कौन अस्वीकार करता है। पर उसके साथ जो मानसिक लगाव है वह रहेगा यह जरूरी नहीं है। उसे छोड़ा जा सकता है। इसीलिए भगवान् महावीरने कहा—निर्वेदका फल है सब भोगोंके प्रति विरक्ति। निर्वेदका दूसरा फल है आरम्भका परित्याग। जहाँ भोग है वहाँ आरम्भ है। जैसे ही भोगकी विरक्ति होती है, वैसे ही आरम्भके प्रति उदासीनता आ जाती है। उससे ससार-मार्ग विच्छिन्न हो जाता है।

हर प्रवृत्तिके साथ बन्धन लगा हुआ है, जैसे अग्निके साथ बुँडा। 'सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाविनिर्वायुता।' प्रत्येक कार्यमें थकान होती है, निवृत्तिसे वह दूर होती है। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ अवश्य बन्धन है,

निर्वेद

उसके छुटनेसे बचन भी टूट जाता है। बचनको छोड़नेके लिए ही ममकु बना जाता है। भुमुक्षासे बचनेके प्रति बड़ा होषी ह उससे विराग होता है। विरागके प्रति आकर्षण होनेसे राव स्वय नष्ट हो जाता है।

प्रवृत्तिके हेतु

भारतीय बचनको परिपूर्ण सामाजिक जीवनकी परिकल्पना पार पुरपाथोमि निहित है। व ह—काम बच मोक्ष और धम। इनमें काम और मोक्ष दो साम्य ह और श्रेय दो साधन ह। काम शरीर प्रधान प्रवृत्ति ह बच उसकी पूर्तिका साधन है। मोक्ष आत्माकी सहज प्रवृत्ति है धम उसकी पूर्तिका साधन ह।

आध्यात्मिकता मोक्ष स्वतन्त्रता—ये अतिन अर्थक है। जो स्वतन्त्रता चाहता है वह मोक्षके प्रति आस्थायान् नहीं है।

मनोविज्ञानके आचार्य डॉ० कॉमरल कामको सब प्रवृत्तियोंका मूल माना है। साम्यवादके आचार्य काक माफ्त शारी प्रवृत्तियोंका मूल अर्थ मानते हैं। उनके अतिमत्तम अर्थपर ही शारे विकास आचार्यि ह। अध्यात्मकी साधना शारी प्रवृत्तियाका मूल मोह है। काम और धमका विच्छात्त एकही ह। पुण्याचक्रदुष्टकी कल्पना परिपूर्ण है। मोहकी तरह निर्मोह भी प्रवृत्तिका हेतु है। सुखके लिए हर मनुष्य प्रवृत्ति करता है। अचान् महावीरने कहा—धम बड़ासे सुखके प्रति विराग होया है। यदि मोह ही प्रवृत्तिका हेतु होता तो साधु इतने कह क्यों लकते? सुख दो प्रकारका है—सायाच और अनायाच। जिस सुखन भावा उपस्थित ही सके वह सायाच और जिसमें भावा न लकी वा सके वह अनायाच है। दुष्टरा व्यक्ति उसमें भुक्ति आकटा है सुखन भावा आ जाती है। अनिक सुन अत्यन्त है पर निर्वाच नहीं। प्रसदासे सुखी धनन भावके सुखने निम्नसे भावा पहुँचानी वा सकती है। निरा और प्रसदा की भूमिसे जो अरर उठा हुआ है। उसके सुखन भावा नहीं लकी वा

सकती जितना भी पौद्गलिक सुख है वह सब अनेकान्तिक है। एक व्यक्ति सगीतमे आनन्द लेता है। १०५ डिग्री ज्वरमे कोई सगीत सुनाये तो उसे वह अच्छा नहीं लगता। प्रत्युत अप्रिय लगता है। जिस सगीतसे आनन्द आता था वही उसके लिए ज्वरमे दुःखका हेतु बन गया। मिठाई रुचिकर लगती है पर अरुचिके प्रकोपमे वह रुचिकर नहीं लगती। हर वस्तुमे समय, क्षेत्र आदिकी अपेक्षासे भेद आ जाता है। आत्मिक सुख आत्पन्तिक और एकान्तिक होता है इसलिए वह अनावाध है।



सहिष्णुता

सहिष्णुता बड़ी है मत मत स्वाकार करत ह । पर समयपर उसे
 पत्र रचना कलिन है यह भी अनुभव करत ह । फलित यह हुआ कि
 महिष्णुताको सामना जीवनम आवश्यक ह किन्तु कलिन भी है । पहले
 उसे जीव मानकर बल्लेसे वृत्तियाम व्यवय अन्तर जाता ह । हम साथ ह
 हमारा एक निश्चित लक्ष्य है । उसको सिद्धिके लिए सहिष्णुताका विकास
 करना आवश्यक ह । सहन वृ स्वरो भी करना पड़ता है क्योंकि उसके
 बिना कोई बलि नहीं । बल्के बहिष्कृत एक सानु मरे पास जाता । वह
 साथ व्यवस्थाम आचारके कथनको भी सहन करनम अथम वा । अब यह
 किसीके यहाँ मौकरी करता है और माझिके उपासकको भी सहता है ।
 मने पूछ—क्या तुम सहते हो ?

वह बोल न सदा । मौकरीके बनेक विवहताकाको सहना पड़ता ह
 क्योंकि दूनरी और रोटीको समस्या है । सामुआके सामन रोटीकी समस्या
 नहीं है । इसलिए व कभी-कभी वास्तविकतासे दूर बके जात है । रोटीना
 प्रश्न केन्द्र बल्लेवाला बरतीपर बरछा है पर जिसके सामन रोटीकीसमस्या
 नहीं है वह कभी-कभी बल्लेवालाको भी बल्ले का जाता ह । सहिए
 मन्त्र ह कि हम अथम वृ-स्वके विस्तारम व्यापता रहती है । विस्तारकी
 अन्तर्प्रेरणा अ स्पष्टीयका समीप बहिष्कृत होता ह । इसीलिए
 बल्लेवान् महामोरज कहा—हुं स्पष्टीयका सहन मन करी । वे
 सामुआका अपन प्रतीकनम फलावर पच-व्युत कर देते हैं । हमको लगता
 ह कि मन्त्र मुखना समु है । यहाँ सामुनम कुछ नहीं । दूरसे सब
 अन्तर्प्रेरणा ह । वहकाथम आनवाकारी स्थिति बनीय हो जाती ह ।

कोई-कोई व्यक्ति थोड़ी-सी कठिनाईमें घबरा जाते हैं। थोड़ी-सी महिष्णुता न होनेसे ही ऐसा होता है। जरा मोर्चे—कठिनाई कहीं नहीं है? क्या गृहस्थ जीवनमें कठिनाइयाँ नहीं हैं? नाचु-जीवनमें मर्दों, गरमों, नृत्त, प्यासकी कठिनाइयाँ समय-समयपर आती हैं और मान, अपमान, निन्दा आदिकी स्थितियाँ भी आती हैं। क्या इनमें घबराकर पीछे हट जाना बुद्धिमानो है? यह मार्ग हमने जान-बूझकर स्वीकार किया है, फिर घबरातेकी क्या बात है? कठिनाइयोंमें घबराणा रोगका नहीं इलाज नहीं है। उसका नहीं इलाज यह है कि कठिनाइयोंको अनुभवी नाचुआके नामने रखें और उनसे मार्ग-दर्शन लें। इनमें मनका बोझ हलका हो जाता है। रोगी आदमी अपनी नाडीको वैद्यके हाथमें दे देना है, वैसे ही मनकी चिकित्साके लिए अच्छे वैद्य (गुरु आदि) को चुनना चाहिए। गणेशकी कुशताकी तरह मानसिक शक्तिकी कुशताकी भी चिन्ता शानी चाहिए। मानसिक चिकित्सक चुननेके बाद उसके मामले स्थिति स्पष्ट रखनी चाहिए और होना चाहिए उसके मार्ग-दर्शनमें समर्पण-भाव। चिकित्साके समय रोगका उभार आता है पर वह सीमाय बाहर नहीं जाता क्योंकि चिकित्सकका उसपर नियन्त्रण रहता है। इसी प्रकार मानसिक गणेश भी कभी-कभी चिकित्सा कालमें उभर जाता है पर कुशल चिकित्सकको देख-रेखमें वह सीमाका अतिक्रमण नहीं करता। इसीलिए मानसिक स्वस्थताके लिए कुशल चिकित्सकका मार्ग-दर्शन लेना अत्यन्त आवश्यक है। उनका महिष्णुताके विकासमें बहुत-बड़ा योग हो सकता है।

व्यक्ति अपनी शक्तियोंमें अथवा झूठे अभियोगोंमें स्थानमें हटा दिया जाता है। उस समय वह परिस्थितिमें वाच्य होकर यदि निष्क्रिय बनता है तो परिस्थितियाँ उसपर छा जाती हैं और उसे उठनेका अवसर नहीं देती।

जो वर्तमानमें अपमानकी धूँट पीकर भी अपनी कर्तृत्व-शक्तिका

जपनीय करता है उसका समय भी साथ निभाता है। यह जपमानको पीछे छोड़कर समाजमें सम्माननीय स्थान बना बैठा है। इसलिए हर परिस्थितिमें जपनी सक्तिका प्रयोग करनाकाळा कभी निरास नहीं होता।



समर्पण

समर्पण दो प्रकारका होता है—१ वैधानिक, २ आत्मगत ।

आचार्य सभके नायक हैं, हमारे नियामक हैं । उनके आदेशानुसार हमारा मारा व्यवहार चलना है । इस दृष्टिमें उनको हमारा वैधानिक समर्पण है । वे आज हमें हजार मीलकी राशिका आदेश दें तो इन उमका पालन करेंगे । पर मैं आज जिन विषयका स्पर्श करूँगा उसमें वैधानिक समर्पणकी बात नहीं होगी । हजार मील चले जाना एक बात है और हजार मील चले जानेमें कृतार्थताका अनुभव करना दूसरी बात है । कृतार्थताका अनुभव आत्मगत समर्पणमें ही हो सकता है । जहाँ व्यक्तिका विकास हुआ है वहाँ समर्पणकी भावना प्रबल नहीं है । कृष्णने जन्ममें कहा— 'मामेक धरण ब्रज ।' व्यवहारमें यह जटिल-ना लगना है और लगना है कि इसमें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता । वह दूसरेमें विलीन हो जाता है । यह भी कम जटिल नहीं है कि जो समर्पण नहीं हुआ वह कुछ पा भी नहीं सका । क्या महाबोर, बृद्ध और भिक्षुने समर्पण नहीं किया ? किया है, उनके बिना उनकी नाचना निश्चि तक कैसे पहुँच पाती ? बृद्धने कहा—

इहासने शुष्यतु मे शरीरं स्वगस्थिमास प्रलयं च यानु ।

अप्राप्तं योगिं बहुकल्पदुर्लभा नैवासनान् काममित्रं चलिष्यति ॥

जबतक योगि प्राप्त नहीं होगी, इस आसनसे मेरा शरीर नहीं चलेगा । क्या यह समर्पण नहीं है ? क्या महाबोरने समर्पण नहीं किया ? 'भुजे कैवल्य प्राप्त नहीं होगा जबतक मैं सभी प्रकारके कष्टोंको सहन करूँगा ।' क्या यह समर्पण नहीं है ? ऐसा समर्पण टन सब महा-

पर्याप्त शिक्षा है अिनकी मन्नामे बननाका मान-रक्षण मिला । जबतक मन्त्र अपना बलिदाना चार हाता = तबतक वह मारी बना रहता है । मन्त्रपथम इतिव क्रमका बना रन्ना है । ऐमवाला मन्त्र ही मारी बन । यथा बनवाग्वा अपना मन्त्रवाग्को बटवो बट पानी होती है ।

अग्निकी सत्रम परके समर्पित अपन प्रति अपन क यके प्रति होना चाहिए । उन्म आचायके प्रति वह महत्त समर्पित हो जानना । उद्यमक प्रति समर्पित हुए बिना वह आचायक प्रति भी समर्पित नहीं हो पाता । आचायक मास आ मन्त्रान्त है वह उद्यमकी एकतामे आधारक है । उद्यम अविद्यम उन्मा है तबतक समर्पणका अमान अदिग रहता है । बिसका उन्म महान स यकी प्राप्ति है वह उसने लिए अपना स्वस्व समर्पित कर बना ।

उद्यमक दान मान-रक्षणके प्रति समर्पण होना चाहिए । अग्नि क क यके विभ होत है । हमार मान-रक्षक आचाय है । उन्के प्रति समर्पण का उद्दिष्टाने होता है—ब्रह्मनिक और अग्निमन् । ब्रह्मनिक समर्पण बुद्धिना स्था करता है उससे हृदय अमिमूत नहीं होता । हमार लिए ब्रह्मनिक समर्पण बहुत मन्त्रान् नहीं होना चाहिए । विधान मान प्रेरक होता है और मर्माचार्य मान सूचक होती है । साधुमानके रबीहरणकी धारक शेष जीवकर नहीं जाते क्योंकि उन्में सूचक अन्ति है वह किसीकी नहीं ऐकता फिर भी कोई उसे जीवकर नहीं जाता । आत्मीयता नहीं होती वही प्रामाणिकता विद्याका म ईश्वरता है उद्य आचायके आदेशका पाठन किया क हो तब आचायके आदेशका अतिशय्यन करनेमे इस निश्चिन आत्माका उद्यम नहीं होता ।

वहा बट-निष्ठाका अन्वय, विधानिक नहीं है होता है । वहा  अन्वय होती है एक विचार जाता ५११ अर्

हमारा भी व्यक्तित्व है, पढे-लिखे है, बीसवीं सदीमें जी रहे हैं। इन विचारोंसे समर्पणमें कठिनाई आती है पर हम क्यों भूल जाते हैं कि हमारा मार्ग साधनाका मार्ग है, नमस्कारका मार्ग है।

‘छद्म निरोद्धेण उच्येद् मोक्ष’—

मोक्ष तभी प्राप्त होगा जब अपनी इच्छाओंका निरोध किया जायेगा। इच्छाका निरोध और समर्पण दो नहीं हैं। जहाँ इच्छाका निरोध है वहाँ समर्पण है। जहाँ नमस्कार है, वहाँ इच्छाका निरोध है।

आचार्य एक कार्यके लिए मार्ग-दर्शन देते हैं कि तुम्हें यहाँ ऐसा करना चाहिए। उस मार्ग-दर्शनके प्रति यदि विभिन्न धारणाएँ उत्पन्न हों तो समझना चाहिए वह समर्पण नहीं है। नमस्कार करनेवाला अपने लिए शेष कुछ नहीं रखता। अपने लिए शेष रखे, वहाँ समर्पण नहीं होता। मुक्तका आदेश पाते ही शिष्य बिना ननु न च क्रिये सांपके दांत गिनने लगा। यह समर्पण है। भगवान् महावीरने गौतमको अन्त समयमें अन्यत्र भेजा। वे सहज भावसे चले गये। विधानकी भाषा इस समर्पणको सा नहीं सकती। विधानकी भाषापर चलकर कोई समर्पण कर भी नहीं सकता। सत्यके प्रति अपने- जो समर्पण कर देना लक्ष्यके प्रति समर्पण है। कठिनाईमें भी आस्था न ढिगे तब माना जा सकता है कि आत्मासे उठा हुआ समर्पण है। आत्म-समर्पणमें अपनी समस्याका भार स्वयंको उठाना नहीं होता। जहाँ समर्पण नहीं होता वहाँ अपनी चिन्ता सताती है मार्ग-दर्शकके प्रति श्रद्धा नहीं जमती।

मे सोचता हूँ अमुक व्यक्ति मेरा सहयोगी है, उसके साथ रहनेमें मेरा हित है। आचार्य यदि कहें कि तुम उसके साथ मत रहो, उस समय पारा खट जाता है। क्या हमने समर्पण इसलिए किया था कि हमें गैदकी तरह इधर-उधर डकेला जाये—कभी किसीके साथ, कभी किसीके साथ? आचार्य हमारी स्थितियोंको अनुभव ही नहीं करते। ऐसे प्रश्न दिमागमें घूमने लग जाते हैं। समझना चाहिए—समर्पणका आनन्द अभीतक नहीं

पुस्तक क्रिया है किन्हीं न ताने बनाना भाग-भाग मिला। सबसे कमप्य अपना वृत्तियाका भाग होता है सबसे कम भारी बना रहता है। समपक्ष व्यक्ति इतना बना रहता है। कमजोर तक ही भारी बन। यद्वा देनवाली अपेक्षा देनवाली कहीं बट पीनी होता है।

व्यक्तिने सम पक्षके समर्पित अपन प्रति अपन कामके प्रति होता चाहिए। उसका आचारके प्रति वह सम्ब समर्पित हो जाना। सम्ब प्रति समर्पित हुए बिना वह आचारके प्रति भी समर्पित नहीं हो पाता। आचारके साद या सम्ब है न कामकी एकताके आचारण है। सम्ब बन्धन रहता है सबसे समपक्षका बन्धन अधिन रहता है। जिसका काम नरान् सत्यकी प्राप्ति है वह उसके लिए अपना सबस्य समर्पित कर देना।

सम्बके बाद भाग-भागके प्रति समपक्ष होना चाहिए। क्योंकि व सम्पत्ते मिल होने है। हमारे माय-बन्धन आचार है। सम प्रति समपक्ष या वृत्तियाके होता है—बनानिक और नास्तिन। बन्धनिक समपक्ष बुद्धिवा स्पष्ट करता है उससे हृदय अनिभूत नहीं होता। हमारे लिए बन्धनिक समपक्ष बहुत मूल्यवान नहीं होना चाहिए। बिना मान प्रेरक होता है और मर्माचार माय सूचक होती है। सामुजिके रजोहरणको यावक जोन करीकर नहीं पाते क्योंकि सम सम्ब सूचक बन्धन है वह रिधीकी नहीं रोकता फिर भी कोई उसे करीकर नहीं जाता। जिस बन्धनिककाके पीछे आत्मीयता नहीं होती वही सामाजिकता बिलम्बा भर होती है। कोई दूसरा देखता है उस आचारके आवेष्टका पासन किया जाने और कोई नहीं देखता हो उस आचारके आवेष्टका अतिक्रमण करनेमें कोई सकीच नहीं होता। इस सिद्धिमें आत्मका सम नहीं होता।

यद्वा भर सिद्धिका सम्बन्ध बन्धनिक नहीं होता वही आत्मका सम होता है। वही बन्धनिकता प्रथम होती है वही आत्मा बन जाती है। एक विचार जाता है—हम सुखमें अपना अतिक्रमण विधीन नहीं करें ?

हमारा भी व्यक्तित्व है, पढ़े-लिखे है, बीसवीं सदी में जी रहे हैं। इन विचारों से समर्पण में कठिनाई आती है पर हम क्यों मूल जाते हैं कि हमारा मार्ग साधनाका मार्ग है, मयमका मार्ग है।

‘छत्रं निरोद्धेण उवेह भोक्ख’—

मोक्ष तभी प्राप्त होगा जब अपनी इच्छाओं का निरोध किया जायेगा। इच्छाका निरोध और समर्पण दो नहीं हैं। जहाँ इच्छाका निरोध है वहाँ समर्पण है। जहाँ समर्पण है, वहाँ इच्छाका निरोध है।

आचार्य एक कार्यके लिए मार्ग-दर्शन देते हैं कि तुम्हें यहाँ ऐसा करना चाहिए। उस मार्ग-दर्शनके प्रति यदि विभिन्न धारणाएँ उत्पन्न हो तो समझना चाहिए वह समर्पण नहीं है। समर्पण करनेवाला अपने लिए शेष कुछ नहीं रखता। अपने लिए शेष रखे, वहाँ समर्पण नहीं होता। गुरुका आदेश पाते ही शिष्य विना ननु न च किये साँपके दाँत गिनने लगा। यह समर्पण है। भगवान् महावीरने गौतमको अन्त समयमें अन्यत्र भेजा। वे सहज भावसे चले गये। विद्वानको भाषा इस समर्पणको छा नहीं सकता। विद्वानकी भाषापर चलकर कोई समर्पण कर भी नहीं सकता। सत्यके प्रति अपने-आपको समर्पण कर देना लक्ष्यके प्रति समर्पण है। कठिनाईमें भी आस्था न बिने तब माना जा सकता है कि आत्मसे उठा हुआ समर्पण है। आत्म-समर्पणमें अपनी समस्याका भार उठाना नहीं होता। जहाँ समर्पण नहीं होता वहाँ अपनी चिन्ता सताती है मार्ग-दर्शकके प्रति श्रद्धा नहीं जमती।

मैं सोचता हूँ अमुक व्यक्ति मेरा सहयोगी है, उसके साथ रहनेमें मेरा हित है। आचार्य यदि कहें कि तुम उसके साथ मत रहो, उस समय पारा चढ़ जाता है। क्या हमने समर्पण इसलिए किया था कि हमें गैदकी तरह इधर-उधर ढकेला जाये—कभी किसीके साथ, कभी किसीके साथ? आचार्य हमारी स्थितियोंको अनुभव ही नहीं करते। ऐसे प्रश्न विभागमें धूमने लग जाते हैं। समझना चाहिए—समर्पणका आनन्द अभी तक नहीं

समर्पण

मिला है। वही व्यक्ति अपना विचलन माय-बापके जिनिक मानने लग जाता है वही एसी समस्याएँ नहीं हो जाती है। माय-बापके विचलनपर मात्मा रहनवासीको कोई बहिर्गर्ह नहीं होती। प्रोपाचार्यन एककर्म्यसे अगुआ माना। उसन उत्काल काटकर दे दिया। वहाँ विधानकी कोई जाया नहीं बोलती थी कि उसे देना ही पड़। उसन सोचा कि जिसको मने मर मान लिया उसके प्रति मरा क्या करताम् है।

उसन अपन कृत्यनया वाक्य दिया और अँगुठा दे दिया। कभी-कभी भुव और आचार्य दो हो जात है। एक गुब होते है पर आचार्य नहीं एक आचार्य होते है पर मर नहीं। गुबके प्रति सहज समपथ होता है। आचार्यके प्रति वह सहज कर्म नहीं भी होता पर कृत्यके नाते भी आचार्यके प्रति समपथ आवश्यक है। आचार्य भी हर सामुझे एनी जपेला ता उस सकते है कि कर्मसे कम कृत्यके नाते समपथन कोई बहिर्गर्ह न जाय। बुझे नाते हो तो और अच्छा। मरा अपना अनुभव है—

एक समय विचलन किंठे कहा जाता है न नहीं जानता था। केवल भुव-वचनके आचारपर काय चकता था। वैसे ही लस्कार पड़ गये। किसी भुवनको वह अच्छा भी न लगे पर एसा होता था। जब विचलन होने लगा तो देखा अपन किए विचलन करनेसे विरपर मार चकता है। क्या अच्छा हो उस मारको उठानके लिए दूसराको भुव उ और स्वयं इसके ही जाये। विचलने मुक्त रहना भुवन स्थिति है पर दुर्भाग्य मोह सताता है कि उससे हमारा स्वात्म्य छिन जाता है। जब हम विहार करते है उन मरानके कारण क्या दूसरेको अपना बचन नहीं देते। अपना जीवन उम्मा है इसलिए अपनी वि-तामोकी गठरीके लिए दूसरोंको सहयोगी बना लें, जो हमारा मार बोये और हम सुखसे लौने। इसके तरह जीवन विचलनका अवसर मिलता है। निर्विचलताका जीवन सभी मिलता है जब विचलनका मार कोई स्वयं न बोव। दूसराको मारवान् बनाना ही समपथ है।



प्रामाणिकता

व्यक्ति जितना आध्यात्मिक होगा उतनी ही उममे मन्प-निष्ठा घटेंगी। मत्प-निष्ठ महज प्रामाणिक होता है। अजिनाज लोग मोचते हैं—अमरुने अमुक कार्यमे लाभ उठायो तव मसे वह क्यों नहीं करना चाहिए ? यह चिन्तन परिस्थितिसे बुझा हुआ है। क्या हम भी परिस्त्रिणिके मन्दभ्रमे सोचें ? और यदि सोचें तो क्या वह उचित होगा ? कुठ लोग कइमे है कि अमुक काम हम करना नहीं चाहते थे, पर मामनेवालने क्रिया तव हम भी वैसा करना पडा। तो क्या हम भी ऐसा करें और यदि करें नां क्या ऐसा करना हमारे लिए उचित होगा ? किमी एक मारुने मर्वनामान्य व्यवस्थाका अतिक्रमण किया। तव क्या दूसरा भी यह मोचे कि अमरुने अतिक्रमण किया है, मैं भी क्यों न करूं ? आध्यात्मिकतामे विज्वाग रखने-वाला ऐसा नहीं मोच सकता।

समारमे अनेक प्रकारकी भोग-मामर्शी है, मुय-भुविवाके माचन है। समाजके व्यक्ति उनका भोग करते हैं। क्या माधु ऐसा मोच सकता है कि सामाजिक व्यक्ति उन पदार्थोंका भोग कर रहे हैं, हम क्यों न करें ? यदि वह ऐसा मोचे तो वह माधु नहीं बन सकता। पर साबना आश्रित साधना ही है, सिद्धि नहीं। उसमे कभी-कभी छिपी दुर्बलता प्रकट हो जाती है और दुर्बलताके प्रवाहमे वहकर कोई-कोई वैसा काम कर लेता है जो साधुको नहीं करना चाहिए। किन्तु उसे उदाहरण मानकर क्या दूसरे-के लिए भी वैसा करना उचित होगा ? सब व्यक्तियोंको साते देख, प्रश्न उठेगा—मैं क्यों उपवास करूं ? पर क्या उ तभी करना चाहिए जब सबको खानेको न मिले। ऐसा नहीं है। जब सबको भरनेट े ते

मिलता है तब भी उपवास किया जा सकता है और अपनी स्वतन्त्र भावना से किया जा सकता है। अन्नकी कोई कमी नहीं है पर साधको शत्रु आहार नहीं मिला था कम मिला उस समय उमरा चिन्मन मग्न नहीं होता कि सब भोग खा रहे हैं म भूखा क्या रहूँ ? किन्तु वह इस प्रकार सोचता कि नाभ छात्र ही मर उपवास या उन्मादरी हो बनी। भगवानन कहीं—
 तपोति ब्रह्मिण्यस्य—आहार न मिलन या कम मिलनपर सहज उप हो रहा है यह साधक मूखपर विषय मा लेनी चाहिए।

एक व्यक्ति वाली देता है सामान्य दुःखताके कारण दूसरा उसे पाँच वाली देता है। यह व्यक्तिपर परिस्थितिकी विषय है। मनिनो परिस्थितिस प्रभावित नहीं होना चाहिए। उस बन्धोत्त किन्ना सहन करता मरा कम है एसा सोच सात रहना चाहिए।

उठ घाटन समाप्त—यह मान्यता मानके समानिम भी टटटी जा रही है। हम बीस है केन-साठनम और मा मता केनर बलते है समाप्तकी और यह भी मध्यकालीन समाप्तकी। यह केते उचित हो सकता है ? हमारी मान्यताका आधार भीतरपय होना चाहिए।

अनुकण्य वृत्ति सक्रमक होती है। उसम मूखमूठ मापता निस्तम बन जाती है। साधत्व स्वीकारके समय कोई यह कल्पना नहीं करता कि अनुक-अनुक ठीक रहने तो मैं भी ठीक रहूँगा। व्यक्तिके पीछे वह जानसे सिद्धांतका साथ नहीं निय पाता। उत्पन्नित व्यक्तिसे कोई पकटी हो जाने तो वह सम्य है पर परिस्थितिके सहारे हो वह सम्य नहीं है। आत्म्यात्मिक व्यक्तिम उत्पन्निके विचार प्रपास होन चाहिए। भयवान् महावीरन कहीं है—बिना वा रामो वा एगवो वा परिज्ञापवो वा पुते वा चावप्याज वा। विमन भवना राधिम समामे मा कनेकेम स्वप्नम या जानुत मवस्वाम आत्म्यात्मिक मन्ति कोई अनुचित काम नहीं करता। सीतले अग्निसे बनवद हुए वतके तटपर खडे होकर कहीं—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नभागे,
यदि मम पतिभावो रात्रिवादन्यपुमि ।
तदिह दह शरीर मामक पावकेन्द्र,
विकृतसुकृतभाजां येन साधो त्वमेव ॥

नोदमे भी मेरा मन विचलित हुआ हो तो तू मुझे जला डाल—ऐसी कठोर बात कोई आध्यात्मिक व्यक्ति ही कह सकता है, दूसरा नहीं कह सकता ।

साधु परिपद्मे प्रामाणिकताकी चर्चा करना कोई मूल्य नहीं रखता । कोई आध्यात्मिक है और प्रामाणिक नहीं है, ऐसा नहीं हो सकता और यह भी नहीं हो सकता कि कोई प्रामाणिक तो है पर आध्यात्मिक नहीं है । साधु वे ही होते हैं जिनकी अध्यात्मके प्रति गहरी निष्ठा होती है । उनकी प्रामाणिकताका सीधा सूत्र है—‘जो बीतगमने किया वह करो, जो न किया वह मत करो ।’

भगवान् महावीरने प्रामाणिकताका बहुत सूक्ष्म विचार किया है । उन्होंने बताया—एक साधु गृहस्थके घरसे ‘पछेवढी (उत्तरोप बस्त्र) सीझेगा’—यह कहकर सूई लाया तो वह उससे चोलपट्टा (अबोधम्त्र) नहीं सी सकता । ‘नाखून काटूंगा—यह कहकर कैची लाया तो वह उससे बस्त्र नहीं काट सकता । बीमार साधुके लिए दूध चाहिए, यह कहकर दूध लाया तो उसे कोई दूसरा साधु नहीं पी सकता । प्रामाणिकताका यह कितना गहरा निदर्शन है । इसे वे ही व्यक्ति निभा सकते हैं जो आध्यात्मिक हैं ।

परिस्थितिपर विजय

कलु मे अपना आस्थाके स्वरमे बोला । उसी विश्वासमे चलता आया हूँ । परिस्थितिका कभी कायल नहीं बना । क्या यह व्यवहारमे सम्भव

है? यह प्रश्न हो सकता है। न इसका उत्तर इसी भाषामें देना कि वह असम्भव नहीं है। सब तो यह है कि साधकको परिस्थितिके सामन घुटन नहीं टकन चाहिए। वह पतनका मान है। साधना करनेवाला पूष नहीं होता पर जब परिस्थितिके आचरणमें अपनी अपूषताको दानमें सम जाता है तब उसकी साधना अंतरमें पत्र आती है। जो साधक होता है वह परिस्थितिके साथ अपनी दुबलताको भी देखनका प्रयत्न करता है। जो ऐसा करता है वह परिस्थितिके सामन घुटने नहीं टकता। कठिनाईयाँ हर व्यक्तिके सामन आती हैं और परिस्थितियाँ हर व्यक्तिको समझाती हैं पर उनसे परास्त नही होते हैं जिनके पास सामनाका बल नहीं होता। दूसरी बात—साधक सरलपणे शून्य नहीं होता। उसका अर्थ है जो स्थिति आते उसे सरलपणे सामने रखे। अपने सिरपर उसका भार न होय। आभाव व अधिकारी व्यक्ति उसपर अपने आप सोचने। सोचना हर व्यक्तिका काम नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति परिस्थिति की चिन्तामें पत रहे तो "गहन पश्यता ज्ञान"।

हम परिस्थितिके चरचारे नहीं। मरुत हम हैं। ऐसा मान नाय करते हैं। जहाँ कठिनाई आये उसे यथास्थान पहुँचा दें। उसे समित स्थानपर न पहुँचानेके कारण ही समान व व्यक्तिके लिए अनिष्ट होता है। परिस्थितिवापर चिन्तन करने व उसे दूर करनेका दायित्व अधिकारियोंपर है। उनका यह प्रयास है कि किसीको असह्योपना अनुभव न हो। जो असह्य होता है वह असम्भवसाधे होता है। उसे दूर करना अधिकृत व्यक्तियोंका काम है। हमारा काम है—परिस्थितिका कायक न होना, अहिंसु बनकर उसका सामना करना और अपनी भावनाको बनाये रखना। आलोचना सोचनको अस्त-व्यस्त बना देती है। परिस्थितिके परास्त होकर बोधी भी कठिनाईको न सहन करना क्या बुद्धिमत्ता है? परिस्थितियाँ आये अल्प समित समाधान कोर्ने पर अल्प परास्त

परस्परता

साधनाके दो रूप हैं—वैयक्तिक और सामाजिक । हमारा सपना है सब हू भव-बन्धना है परस्पर सहयोग है आत्मत्व है । जहाँ जगत् व्यक्तिके साथ रहता है वहाँ कोठनाई भी होती है । अपनी-अपनी रचि होती है अपना अपना सस्कार । सब एक रचिके मन्त्री होत । चिन्तन भी सबका एक मन्त्री होता । वन् विविधता मात्र भी है । भगवान् महावीरन कह्या—
पत्तय सम्भा पत्तय चिन्नु पत्तय बवथा ।

यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका सम्मान है । हम परस्पर रचि व नस्कारना सम्मान करके ही अच्छा जीवन बिता सकते हैं नहीं तो बमलस्य बह जाता है । पतन-अस्तम ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य होता है । यह हम सब बचतुम होते तो सब एक समान होतें । अनुग्रह वेदनाधान् ह । पतनाका घन है—विभिन्नता—रचि व नस्कारोको विभिन्नता ।

पारस्परिकताका पहला ध्रुव है—सहिष्णुता । सबकी मर्यादाके अतिरिक्त रचि सबका परस्पर सहन करना चाहिए । अज्ञानका अपने सहनानो और सहनानीको अपने अज्ञानकी रचिना सम्मान करना चाहिए । जहाँ दोनोंकी रचि टकराये वहाँ दोनोंको ही धारा पौडा समय कर देना चाहिए ।

यहाँ सम्म करनकी रचि नम होती है वहाँ परस्पर बरह होता है । साक्ष्यान सहिष्णुता अधिक होना चाहिए । जातिर गृहस्थ भी तो सहन करते हैं । पुरानी कहानी है—धीनना बाबसाह अपने मन्त्रीके घर गया । उसका परिवार बड़ा था । सब साथ रहते थे । बाबसाहान बिनामा भी—तुम सबको कैसे बिनाया ? मन्त्रीने उत्तर दिया—मम सब कुछ सह्या ।

सधमे आचार्य सर्वाधिकारसम्पन्न होते हैं। वे भी समय-समयपर बद्ध-कुल सहते हैं। सहन करना बह्मपनका लक्षण है। जो छोटे हैं, उनकी अपेक्षा अन्नगामीको सहन करनेका अधिक विकास करना चाहिए ऐसा करके ही वे छोटाको सहिष्णुताका पाठ पढा सकते हैं।

कोई व्यक्ति स्वलना करता है। दूसरा उसे न बताये तो गलती आगे बढ़ती है और मघका मघटन शिथिल होता है। यदि बताया जाये तो उसे चोट-सी लगती है। ऐसी स्थितिमें तीसरा मार्ग अपनाना चाहिए। गलतीका प्रतिकार अवश्य होना चाहिए पर साधना-शुद्धिके साथ। अवि-कारकी भाषाके स्थानपर सुझावकी भाषा अधिक सुफल देती है। कितना बेहूदा है ऐसा कार्य करता है। इसके स्थानपर—यदि तुम ऐसा नहीं करते तो अच्छा रहता, या ऐसा करते तो कैसा रहता।—ये वाक्य गलती बताते हुए भी उसे उन्नत बननेका अवसर नहीं देते। सुझावकी भाषामें कहनेसे उसे बुरा नहीं लगता। यह अब्यात्म-पद्धति है, हृदय-परिवर्तनका मार्ग है। इसे अपनाकर हम उसे सोचने-समझनेका अवसर देते हैं। हृदय परिवर्तनके प्रयोग अनेक क्षेत्रोंमें किये जा रहे हैं। कुछ जेलोंमें भी उन्हें महत्त्व दिया जा रहा है। आचार्य भिड़ाने कहा है—धर्म बल-प्रयोगसे नहीं होता, वह हृदय-परिवर्तनसे होता है।

छोटा साधु बड़े साधुकी गलती देखे तो उसे नम्रतासे सूचित करना चाहिए। भाषाका व्यवहार सम्यक् होनेसे सोचनेकी पद्धति भी ठीक हो जाती है। कटु भाषासे व्यवहार भी कटु बन जाता है। कहने-कहनेमें दिन-रातका अन्तर होता है। शिष्ट उन्धोंमें दिया गया उपालम्भ भी हृदयमें नहीं चुभता। इसीलिए भगवान् महावीरने भाषाका विवेक दिया। भाषाके विषयमें जितना भगवान् महावीरने कहा उतना शायद ही किसीने कहा हो।

भाषाके व्यावहारिक पहलूपर भी ज्ञान देना आवश्यक है

१ जहाँ दूसरोंमें सहयोग लेनेको अपेक्षा हो वहाँ 'कृपया' शब्दका प्रयोग

करना चाहिए। प्राचीन यज्ञविधिमें इच्छाकारण शब्द प्रयोगमें आटा या। आटाव भी विशेष परिस्थितिमें ही आदेशनी मायाना प्रयोग करते थे। सामान्यत इच्छाकारण शब्द प्रयोगमें आटा या। पाश्चात्य देशोंमें Please (कृपया) शब्द सामान्यत व्यवहृत होता है। २ काम समाप्तिपर कृतज्ञोक्ति शब्दके द्वारा आभार प्रदान करें। ३ अविनय या आक्षतना होनपर खर है एसा ही यथा शब्दके द्वारा खर प्रकट करे। ४ कोई काम करनेको नहे खत समय न कर सके तो कहे—मुझे क्षमा करें यमी न आपका काम करनेमें असमर्थ हूँ। ५ स्वीकृतिमें सहत शब्दका प्रयोग हुना चाहिए। ६ अनुमृत्तिकी विषयोंके कारण छोट-छोट प्रसन्न भी आशुकी पत्रा कर देते ह। आशुकी स्थितिमें—म सोचूंगा मझ एसा कमा सम्भव है आप कहते ह वैसा ही आदि-आदि बान्पोंके द्वारा उत्तरों टाक बना चाहिए। आशु तत्काळ ही बनता है समयके बाव टळ जाता है। ७ एक व्यक्ति दूसरेके विषयमें चिकामत करता है। बात अन्यथा निकलती ह। उस समय आरोर क्या कनाया ऐसे पारी बान्प न कहकर मुझे आश्चय है आपने एही बात किये कही आदि बान्पोंका प्रयोग व्यवहारमें सरलता करता है। भाषा कट्टु होनेसे व्यवहार टट जाता है इसकिए सामुदायिक जीवनमें भाषाका मझ प्रयोग आवश्यक होता ह। ८ बात बनन-आपने पडी नहीं होती। कुछ छोय छोटी बातको भी श्रद्धाभास कना देते ह और आप्पात्मिक व्यक्ति बडी बातको भी ही मिलिठम समाप्त कर देते है।

उत्तरना पैदा करणेसाठी बात सामन जाने तो तसे व्यक्तिसे सोचना चाहिए, कुछ विचारकर फिर उत्तर देना चाहिए।

अमाथ सवसाखावि विद्विवादि मवाविमि।

स पूष सवसाखवि वरव सान्ध सदा मय ॥

आत्मोन्डी एवना धान्तिके हतु हुई। विचका मय धान्त है वह आत्स

विन् है । पग-पगपर जो अगान्त बने वह कैसे शान्त्रज हो सकता है ।

पञ्चलति जन्थ धरा-धरा-धरागम्य गुह्यादिचोडम् सीमे
रागदोमैण वि अणुमपण न भोयस । न गच्छ ।

—धोडा-मा प्रतिकूल मुननेप राग-द्वेषमे आ जाते हैं, झुनेवाला मोक्षता है—मैने उसे कहकर भूल की, ऐसे अघोर नाचुओका नत्र गच्छ ही नहीं कहलाना ।

जहाँ कट्ट या प्रतिकूल स्वितिको शान्त मनमे महा जाना है वही गण वस्तुत गण होना है । उनीमे रजनेवालोका मामुदायिक जीवन मुचद, नरल और पारम्परिकनाने पूर्ण होना है ।

• •

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो

तुम केवल देह ही नहीं हो और भी कुछ हो। देहमे आगे तुम्हारी इच्छा है। उनसे आगे मन है। उनसे आगे है आत्मा। तुम आत्माको मानो या मत मानो यह तुम्हारी इच्छा है। क्योंकि वह बल्की है। तुम बचक हो। तुम स्थिर बनकर कहो कि आत्मा नहीं है तो सायब नहीं कह सकते।

क्या तुम जानत हो—तुम्हारे अन्दरम दिवनी धरित है? नही जानत। यदि जानत तो तुम नहीं कहत कि आत्मा नहीं है। भले कहो आत्मा नही है इसम मुझ कोई आपत्ति नहीं। पर आत्मा नहीं है इस मानपर तुम्ही अनन्त आनन्दसे बरित रहत हो। श्री० स्योनिव वासिष्ठियव का कहना है कि अस्तित्वबोध-अस्वाभ तथा दूसरे अस्वानाम नियम यमे परीक्षणके आधारपर भ इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि मानव अस्तित्वम अस्तित्वका अभाव और अन्त ही है। वह कोठा दूर भठकर दूसराको सम्बोधित कर सकता है। मानव-अस्तित्वकी यह धरित बुद्धनीय तरफें नहीं है। उनसे निवृत्त है। इसके बारेम अभी कोई पता नहीं चल सका है।

तुम चेतन मनक अगुणम फँसे हुए हो। इसीलिए तुम अपनी असीम अमनाबोसे अन्तर्गत हो। तुम अन्तर्गत मनकी अवसर हो फिर बसो कि तुम्हारी अमताएँ निवृत्त प्रकार प्रकट होती हैं और तुम चित्तम अस्तित्वशाली बनत हो। तुम एक अमोक्षप्रदानसे पूछो—चेतन मनकी अपेक्षा अव्यक्तम मन चित्तना अस्तित्वशाली है? भारतीय अमनिबाल ध्यानको अर्थपरि क्यो माना? इसीलिए कि चेतन मनकी एकाग्र विधि बिना अव्यक्तम मन किया

शोल नहीं बनता । उसके किराघोल बने रिना जघिनयां प्रकट नहीं होती ।

तुम प्रवृत्तिकी रट लगाते-ठगाने मत्यमे गहन दूर जा बैठे । प्रवृत्ति बानो चचलता । यह तुम्हारे जीवनका नियम २१ मरुनी है । पर मरु तुम्हारे जीवनका नियम नहीं है । वह अस्मिन्धका नियम है । उमे तुम निवृत्तिके द्वारा ही पा सकते हो, निवृत्ति बानी स्थिरता । तुम स्थिर काँचमें ही अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हो, चचलमें नहीं । तुम मत्यो मोर करना चाहते ही तो और कुछ मत करो । केवल ध्यान करो । चेतन मनको एकाग्र करो । अवचेतन मनको अपनी धर्मिके प्रदर्शनका अवसर दो ।

ध्यान करो—यह बहुत सरल बात है । इसे ममझनेमें कोई कठिनाई नहीं । पर बहुधा ऐसा होता है कि शब्दोंकी मरलतामें छिपी हुई भावोंकी गहराईको नापना सरल नहीं होता । ध्यानके लिए या चिन्तको एकाग्रताके लिए बहुत खपना पड़ता है और इतना खपना पड़ता है कि शायद अन्य किसी कार्यके लिए उतना नहीं खपना पड़ता । क्योंकि हमारे चांगे और प्रवृत्तिका वातावरण है । हमारा शरीर चचल है । हमारे इन्द्रियाँ चचल हैं । हमारा मन चचल है । मूल लगती है, इन्द्रियाँ चचल हो जाती हैं, मन चचल हो जाता है, देह प्रकम्पित हो उठती है । प्रवृत्ति प्रवृत्तिको जन्म देती है । मूल मिटानेको रोटी आवश्यक होती है । उसके लिए पैसा आवश्यक होता है । उसके लिए व्यापार और व्यापारके लिए और बहुत-कुछ । इन प्रकार एक प्रवृत्तिके लिए हजार प्रवृत्तियाँ आवश्यक होती हैं, एक प्रवृत्तिमें-से हजार प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं ।

क्रोध आता है । इन्द्रिय, मन और देह मारे काँप उठने हैं । मनको शान्तिके लिए तुम क्रोधके कारणका निवारण नहीं चाहते हो । इन मृखला-में भी तुम्हारी प्रवृत्तियोंकी कड़ी टूट नहीं पाती । तुम चाहते हो वैरसे वैर मिटे, हिंसासे हिंसा परास्त हो और शस्त्रसे शस्त्रका नाश हो । पर यह कब

तुम अनन्त शान्तिके स्रोत हो

क्या है? यदि होता तो प्रस्तर मुग ही होता जब बस्त्रोका बुद कैसे जाता? तुम सब मागो बाब निवृत्तिनी बट्ट बडी बाबस्वकता है। इसे पत्तापनबाब बहकर उपचित करते रहोने तो एक दिन यह सघार मान विक रोमियाका काराबु बन जायेगा।

बाबके यात्रिक युगम मानव-मनपर नितना मानवात्मक बचान पर रहा है नितनी बचार्तिक क्रांति बड रही है। नितना नाडी सस्वानना सनाब बड रना ह उतना पहुके नही था। अधिकतम रोयाका कारण यह सनाब बन रहा है। क्या खिबिलीकरबसे अधिक कामप्रब इसकी और कोई चिकित्सा है? अनुभव बहता है नही है। हट्योमन को सवा सन मानान महाबाएकी मापाम को बायोस्सन ह और मनवानु बुद्धकी मापाम को बापापानस्मृति है। बडी इतकी सबभष्ट चिकित्सा है। बट निबिलीकरण क्या है? निवृत्ति। सरीर-वेष्टाकी निवृत्ति मापाकी निवृत्ति और मनकी निवृत्ति। जो मनकी माकी करना नही जानता वह उसे कर नही सक्ता। तुम्हाए प्रवृत्ति इसीकिद प्रबल नही बनती है कि तुम निवृत्तिको अकार प्रवृत्ति बरत हो।

कामके बाब आराम और आरामके बाब काम को करता है वह सब व्यक्तिकी अपछा अधिक काम कर सक्ता है जो निरंतर काम-ही काम करता है। निवृत्ति नही करता। आगरणके बाब नीब और नीबके बाब बाबरब—यह क्या है? प्रवृत्ति और निवृत्तिका समुत्तम। निवृत्तिकी बरी परिभाषा है सबसे बडी प्रवृत्ति। निवृत्तिक बच ह बूसरकी प्रवृत्ति न पहुकेनी निवृत्ति। प्रवृत्ति सतना कथन है। निसका अस्तित्व है, सदन प्रवृत्ति ह सक्रियता है। निसन प्रवृत्ति नही ह वह बसत है। सन सान्नी मापाम कहा जाता ह—जो बच कियानापी है वह सत् है। वन निवृत्ति नको नही होनी किसी भी नही होती। निवृत्तिका बच ही है प्रवृत्तिका सनांतर। एक वैज्ञानिक व्यापारसे निवृत्त होता है और शोन काबन प्रवृत्त। एक निसान गीब-बानसे निवृत्त होता है और कपि काम

में प्रवृत्त। एक भोगी आत्म-साधनासे निवृत्त होता है और व्यवहारमें प्रवृत्त। एक योगी व्यवहारसे निवृत्त होता है और आत्म-साधनामें प्रवृत्त। सबमें अपने-अपने प्रकारको प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है। सब प्रकारकी प्रवृत्तियाँ और सब प्रकारकी निवृत्तियाँ किसी एकमें कभी नहीं होती।

तुम निवृत्तिके नामसे घबराओ मत। उसके निकट जाओ। उसकी आराधना करो। यह एक बहुत ही ऋजुमार्ग है। इसमें चलो। तुम्हारा अनन्त शक्तिका स्रोत जो सिमटा हुआ है, प्रकाशमें आ जायेगा।

तुम आत्मा हो। आत्मामें अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है। तुम जिन वस्तुओंको पानेके लिए भटक रहे हो, वे आत्मामें नहीं हैं। किन्तु उसके पास वह वस्तु है, जिसे पाकर तुम उन्हें पानेके लिए नहीं भटकोगे। जो अपने-आपको नहीं पहचानता, वह बाहरका बहुत-कुछ पाकर भी दरिद्र होता है और जो अपने-आपको पहचान लेता है, वह बाहरसे अर्कित होकर भी समृद्ध होता है। दरिद्र कोई है ही नहीं। पर मनुष्य दरिद्र बनता है और इसलिए बनता है कि वह नहीं जानता कि मैं दरिद्र नहीं हूँ। आन्तरिक विश्वास प्रबल हो तो समृद्धि-ही-समृद्धि है। वह दुर्बल ही तो दरिद्रता-ही-दरिद्रता है। समृद्धि और दरिद्रता तुम्हारे अपने-अपने ही परिवर्तनमें ही है।

तुम्हारे ज्ञान-चक्षुपर आवरण है, तुम्हारे मनमें बासनाएँ हैं, तुम्हारी इन्द्रियाँ अचल हैं इसलिए तुम दरिद्र हो। तुम्हारा शक्ति स्रोत सूखा हुआ है। आवरणको दूर कर बासनाओंसे मुक्त बनो, इन्द्रियोपर अपना नियन्त्रण स्थापित करो। फिर देखो तुम कितने समृद्ध हो। तुमने मान लिया ऐसा करना योगीका काम है, हमारा नहीं। मुझे लगता है, तुमने जो माना है, वह सच नहीं है। सचार्थ यह है कि योगी बने बिना कोई शान्तिका जीवन जी नहीं सकता। तुम पूछोगे, फिर इस दुनियाका क्या होगा? होगा कुछ भी नहीं। दुनिया चली आयी है और चलेगी। तुम योगी बनकर जीओगे तो तुम्हें शान्ति मिलेगी अन्यथा तुम्हारा मन अक्षान्त

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो

होगा तब भीते भी मछी रह्ये । तुम्हारा स्वानु-अस्वान तुम्हें सुरक्षा
 रहेगा और विचारोन्मी मूकता किन्न विच्छिन्न हो जावयी ।

योवीना नाम तुमकर योको मत । मैं फिर कहता हूँ कि हर व्यक्ति
 को योवी बनना चाहिए । इतिमी और मनको इतना समाधान अवश्य देना
 चाहिए जितना मानसिक समुच्चयके लिए आवश्यक हो ।

तुम्हारे वाच्य तुम्हारे विषय और तुम्हारे सकल्प विकल्प तुम्हें
 गतिहीन किन्ने हुए ह । तुम अपनी चित्तके अवल सौतको प्रवाहित
 करना चाहते हो ता अपनेओपर विषय प्राप्त करो । विषयोको मिटाओ
 सकल्प विकल्पओपर शासन करो । तुम योवी बनकर ही एता कर सकोगे ।
 तब बिदे भोमी बनकर सेवक ही रहोगे स्वामी नहीं बनोगे । सेवकको
 पेटी निरु सक्ती ह पर समाधान नहीं मिलता । योवी वह होता है जिसके
 लिए समाधान पाना शेष वही रहता । समस्या तुम श्री नहीं चाहते समा
 धान चाहते हो । तुम्हारी ईदिक आवश्यकताओका समाधान बाहर ह पर
 तुम्हारी आन्तरिक समस्याओका समाधान कही बाहर नहीं है । वह तुम्हारे
 भीतर ही ह तुम्हारे मनम ह तुम्हारी आत्मा ह । मनको बखानी
 उसके आओक्य अपने-आपको दूरो । तुम स्वयं देख पाओगे कि तम
 बनस्य क्षणिके सौत हो ।



तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथमें

मैंने बड़े सहज भावसे कह दिया कि मनको जलाखो पर उसे जलाना क्या इतना सरल है जितना शब्दोंमें दीखता है ? तुम जब-जब उसे जलानेका यत्न करोगे तब-तब इन्द्रियोका तूफान आयेगा । तुम उससे नहीं निपट पाओगे । मनका दिया बुझाका बुझा रह जायेगा ।

मैंने बड़े सहज भावसे कह दिया कि मनको खाली कर डालो । पर उसे खाली करना क्या इतना सरल है जितना शब्दोंमें दीखता है ? तुम जब-जब उसे खाली करनेका यत्न करोगे तब-तब विकल्पोका तूफान आयेगा । तुम उससे नहीं निपट पाओगे । मन भराका भरा रह जायेगा । तुम मानते हो कि स्मृति मनुष्यके लिए बरदान है । मैं भी मानता हूँ कि वह बरदान है । पर तुम क्यों नहीं मानते कि वह अभिशाप भी है । विस्मृतिको तुम अभिशाप मानते हो । मैं भी मानता हूँ कि वह अभिशाप है । पर तुम क्यों नहीं मानते कि वह बरदान भी है । कोरी स्मृति और कोरी विस्मृति दोनों अभिशाप हैं । क्वचित् स्मृति और क्वचित् विस्मृति दोनों बरदान हैं ।

कोई भी विचार मनमें उठता है, वह अपना संस्कार छोड़ जाता है । विचार अच्छा भी होता है, बुरा भी होता है । अच्छा संस्कार तुम्हें ऊपर उठाता है तो बुरा संस्कार तुम्हें नीचे ले जाता है । विस्मृतिको कला यदि तुम्हारे हाथमें नहीं है तो तुम्हारा मुन्दर भविष्य तुम्हारे हाथमें नहीं है । तुम प्रयत्न करो कि कोई भी बुरा विचार तुम्हारे मनमें न घुस पाये । यदि कोई घुस जाये तो विस्मृतिका सहारा लो । उसे दस प्रकार मुझा दो जैसे वह तुम्हारे मस्तिष्कका स्पर्श भी न कर पाया हो । विस्मृतिका प्रयत्न

तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथमें

करोगे तो उसकी स्मृति प्रबल होकर उभर आवेगी। उद्यम उपाय यह है कि तुम अल्प संस्कारकी स्मृतिको इतना प्रबल करो कि बुरकी विस्मृति अरुण-आय हो जाय। प्रयत्न या उपयमको पुष्ट करो क्रोध नष्ट हो जायगा। म्लोताको पष्ट करो अभिमान शीघ्र हो जायगा। श्लुताया ध्यान करो, नष्ट पराश्रित हो जायगा। संतोषका बार-बार चिन्तन करो लोभ विलीन हो जायगा। क्रोध अभिमान भाया और लोभ—य तुम्हारे भाव्य को घट विनाश करनवाले पीछान ह। इनका प्रतिरोध करके ही तुम अपने भाव्यकी सृष्टि कर सकते हो। भाव्य और क्या है? पवित्र विचारोकी सृष्टि भाव्यकी सृष्टि है और अपवित्र विचारोकी सृष्टि ही दुर्भाव्यकी सृष्टि है। तुम स्वतन्त्र छाया ही अपने भाव्यके और दुर्भाव्यके। तुम चाहो तो अपवित्र विचारोको विलीन कर पवित्र विचारोका सूजन कर सकते हो। भाव्य तुम अपने मनपर अपने सूक्ष्म छरीपर जो अंकित करते हो वही कल तुम्हारा भाव्य बन जाता है। वतमानका प्रयत्न पुरपाय कहलाता है और अतीतका प्रयत्न भाव्य। दृढ काम या विचार प्रव्यक्त होता है तब वह संस्कार कहलाता है और नहीं जब व्यक्त होता है तब भाव्य कहलाता है।

न गही जानता तुम नास्तिक हो या नास्तिक? न गही जानता तुम भाव्यम विनाश करते हो या गही? यह जानकर न क्या नयी बात जान पाऊगा? मैं जानता हूँ कि क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है। इस सम्बन्ध संस्कारो तुम भी अस्वीकार कैसे करोगे? एक बार जो शिखा है बुना है और अनुभव क्रिया है वह स्मृति बनकर तुम्हारे सामन जाता है—एक बार ही गही हथारो बार। वह तुम्हें प्रभावित करता है। सबसे तुम कभी दुष्ट होते हो कभी कष्ट। कभी भाग-कनी चोटीपर चले जाते हो और कभी शीककी वतक पहुँचाने चूक जाते हो। संस्कार उद्बुद्ध होता है स्मृति हो जाती है नने ही कोई सूक्ष्म संस्कार उद्बुद्ध होता है तुम्हारी बुद्धि अश्रित चिन्ताम कम जाती है और कोई सूक्ष्म संस्कार जागृत होता है तुम्हारी बुद्धि अश्रित चिन्ताम कम जाती है।

मस्तिष्क तुम्हारे स्थूल शरीरका एक भाग है। उसमें असत्य प्रकोष्ठ है। प्रत्येक कोष्ठमें असत्य सस्कार सिमटे हुए हैं। उन्हें तुम फैला सको तो तुम्हें ऐसे मैकड़ों भू-भागोंकी मृष्टि करनी पड़े। इस स्थूल शरीरका मूल कारण सूक्ष्म शरीर है। कृतकी प्रतिक्रियाका मूल हेतु सूक्ष्म शरीर है और उसीका स्थूल रूप है, दृश्य शरीर। तुम अदृश्यको नहीं मानते, इसमें तुम्हारा क्या अपराध है? इन्द्रियाँ दृश्यसे आगे नहीं जाती। मन अदृश्य तक पहुँचता है पर सहारेके बिना नहीं। उसे सहारा दो देते हैं—इन्द्रियाँ और शब्द। इन्द्रियाँ उसे अदृश्य तक नहीं ले जा सकती। क्योंकि अदृश्य उनका विषय नहीं है। शब्दमें तुम्हारी आस्था नहीं। तुम्हारे पास यह प्रमाण भी नहीं है कि जिसका यह शब्द है, वह अदृश्य-दर्शी था। तुम किमीके शब्दको प्रमाण नहीं मानते, उसके लिए तुम्हारा यही तो तर्क है पर तर्क कहीं प्रतिहत नहीं होता, उसके लिए तुम्हारे पास क्या तर्क है? अदृश्य दर्शी तुम भी नहीं हो। अनन्त अतीतमें जो हुआ है, उसके लिए तुम कल्पना ही दे हो, प्रमाण नहीं। प्रमाण तो तुम अदृश्य-दर्शी होकर ही प्रस्तुत कर सकते हो। दृश्य-दर्शी होकर तो तुम इतना ही कहनेका अधिकार पा सकते हो कि मैं इसके आगे नहीं दे पाता। इनका मैं कब विरोध करता हूँ। मैं दृष्टिकी क्षमताको जानता हूँ और उसकी सीमासे भलीभाँति परिचित हूँ, इसलिए मैं तुम्हारी क्षमताको चुनौती नहीं देता। पर तुम अपनी सीमित दृष्टिको भुलाकर अनन्त सत्यको चुनौती देते हो, इसे मैं तुम्हारा अनधिकार चेष्टा मानता हूँ और मानता हूँ इसे तुम्हारी प्रगतिमें बाधा। हमारा हर कम्पन अपना अस्तित्व छोड़ जाता है। इस आकाश-मण्डलमें ऐसे अनन्त अस्तित्व हैं। सूक्ष्मबीक्षण यन्त्र नहीं थे तब वे अदृश्य थे। आज उनसे मनुष्य परिचित हो गया है। हर पदार्थका प्रतिबिम्ब और हर ध्वनिको प्रतिध्वनि आकाशमें अव्यक्त होकर फिर व्यक्त हो जाती है—एककी अभिव्यक्तिका माघन टेलिविज़न है और दूसरीकी अभिव्यक्तिका रेडियो। आज हम अदृश्यसे दृश्यकी ओर आगे खड़े हैं।

किसी युगम जो आत्मस्य योनीके सिद्ध दृश्य वा वह भाव वन साधारणके सिद्ध दृश्य वन गया है। सत्यका चक्षुसोद्भाटन होता था यहा है। वह जनन्त है इसलिये वह मूढत बनापुत नहीं होता। फिर भी हम प्रयत्न वान् हो तो कतना सत्य जलावत कर सकते हैं वितना हमारी धृति और स्वितिको आलोचित कर सके।

हम पुस्पाकी गाथा गाने समय भावको भुक्त बाते है। इसका वन है कि हम सत्यते अथि निनीनी वरुना बाइते है। भाव्यम जो अनिषयात है वह पुस्पावको सुठमानेकी प्रक्रिया है। पस्पाव कभी विफल नहीं होता—यह शास्वत सत्य है। भाव्य इसीकी एक व्याख्या है। पुस्पावका जो दृश्य और तात्कालिक परिणाम है वह तुम्हारी चक्षुसता है। उनका जो अन्तम और दूरगाभी परिणाम है, वही तुम्हारा भाव्य है। पुस्पावको तुम इसलिये महत्त्व देते हो कि सबसे कृतम परिणतन हो सकता है। अथक पस्पाव प्रवक्त ही तो अथम कृतको अथम वरुना वा सकता है और वरा पुस्पाव प्रवक्त ही तो वान कृत अथुममें वरुना वा सकता ह। यह पुस्पावकी महिमा ह पर भाव्य भी तो उसीकी अनिष भूक्तता ह। भावकी भागकृताका परिणाम भाव भी अथम ही सकता है और वीस वय तक यह उसी रूपम वक्त सकता ह। भावके प्रभाक्ता परिणाम भाव भी नयकर हो सकता है और वक्त वय तक यह वरा कल के सकता है। यह हमारे जीवन्की सहाय किन्तु बहुत बटिक प्रक्रिया ह। हमारा हर पुस्पाव अथमाला एक वन हमारे वान वीस बाता है। व ही अथु अपनी स्वितिके अथम हम प्रभावित करती रहते है। हम उनकी अदृष्ट करीको जोडना नहीं वामते।

हर भावकी विन और अमृत आत्मन वितना स्वतन्त्र ह कतना उसका परिणाम भुपत्तेम स्वतन्त्र नहीं है। वेकपर चक्षुमे हर भावकी स्वतन्त्र है पर अतरनेम परतन्त्र। आत्मन हर भावकी स्वतन्त्र है पर पचानेमें परतन्त्र। इन नियमके आलोकरने तुम अब नियमकी पकी कि हर भावकी पुस्पाव

करनेमें स्वतन्त्र है पर उसका फल भोगनेमें परतन्त्र । अतः तुम समझ गये कि तुम्हारा भाग्य तुम्हारा पुरुषार्थ ही गढ़ता है और तुम जान गये कि तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथमें है । तुम भविष्यकी चिन्ता कर सकते हो पर वर्तमानको शक्तिशाली बनाये बिना तुम्हें भविष्यकी चिन्ता करनेका अधिकार नहीं है । तुम्हारा न समर्थ और पवित्र होना तो अतीत तुम्हें अन्धकारमें नहीं ले जायेगा और भविष्य ओर अमा नव तुम्हें नहीं भटकायेगा ? तुम भाग्यकी ओर मत झूँको, तुम ईश्वरको उस पुरुषार्थकी ओर जो तुम्हारे भाग्यकी रचना करता है । तुम दुर्भाग्यसे भय मत खाओ, तुम भय खाओ उस धुरे पुरुषार्थसे जो तुम्हारे दुर्भाग्यकी सृष्टि करता है । तुम सुन्दर, सुखद और समुज्ज्वल भविष्यका निर्माण चाहते हो तो विचारोपर अधिकार पाना सीखो । तुम विचार करते हो पर विचारोपर अधिकार पानेका विचार शायद नहीं करते ? इसलिए तुम बहुत धार सुन्दर भविष्यकी निर्माण-सामग्रीसे वचित रह जाते हो ।

जो विचार एक बार मस्तिष्कमें उपजता है, वह अपना परिणाम छोड़ जाता है । इसे जानकर तुम नहीं चाहोगे कि मनमें कोई बुरा विचार आये । कोई भी आदमी अपने लिए बुरा विचार नहीं करता । यह स्थूल सत्य है । मूल सत्य है कि अपने लिए बुरा विचार किसे बिना कोई आदमी दूसरेके लिए बुरा विचार कर ही नहीं सकता । दूसरेकी हिंसा करनेवाला पहले अपनी आत्माकी हिंसा करता है । दूसरेका अहित सोचने-वाला अपना अहित सोचता है—ये धिर सत्य है । इनका आधार स्पष्ट है कि मनमें बुरा विचार आकर तुम अपना अहित निश्चित रूपमें करते हो । दूसरोका अहित तो उतते हो भी सकता है और नहीं भी ।

इस असीम आकाशमें प्रसन्नता भी है और विपाद भी है, सामर्थ्य भी है और क्लीबता भी है, ज्ञान भी है और अज्ञानता भी है—वह सब कुछ है जो तुम चाहते हो और वह भी सब है जो तुम नहीं चाहते । तुम जो चाहते उसे तबतक नहीं पा सकते जबतक तुम यह न सीख लो कि

तुम्हें अपने और दूसरोंके लिए वही विचार मनमें आना चाहिए जो तुम पाना चाहते हो। तुम विकास चाहत हो तो निश्चित मानो कि दूसरोंके बिनासका विचार मनम भरकर तुम विकास नहीं कर सकते। विकास ही बिनासका विचार मनम भरो वह स्वयं तुम्हारी और बिना बिना आया। तुम शान्ति चाहते हो तो निश्चित मानो कि अज्ञानका विचार मनमें प्रवृत्त कर तुम शान्ति नहीं पा सकते। शान्ति ही अज्ञानके विचारके मनको अभिविक्त करो वह स्वयं तुम्हारा वरध करगी।

मनको अज्ञाना और आनी करना धीमीके लिए सरल है पर सफलके लिए नहीं। किन्तु इतनी साधना तो सफल होगी चाहिए कि अज्ञानको अभिविक्त भी पल मिल ज्ञान और इस अज्ञानके ऊपर जा जावे।

